05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 126

तारा उपासना का मैथिल स्वरूप : रोज़मर्रा की धार्मिकता

कमल मिश्रा

बोधा ने कहा, 'बड़ी करुण कथा है धर्मावतार! अक्षोभ्य भैरव मिथिला के श्रोत्रिय ब्राह्मण हैं। ओदंतपुरी के निकट जो नालंदा विहार है, उसमें देश-देशांतर से आए विद्वान और साधु शास्त्र-चर्चा किया करते थे। पता चला है कि वहाँ अष्टोत्तर शत विहार थे। वहाँ बौद्ध और शाक्त आगमों के बड़े-बड़े विद्वान और साधक निवास करते थे। जब तुर्क सेनापति बख़्तियार ने उस स्थान पर अधिकार किया, मंदिरों और विहारों को ध्वस्त कर दिया और वहाँ के विशाल पुस्तक-मंदिर को जला दिया, तो विद्वान और साधु या तो मार डाले गए या जिसे जो रास्ता सूझा, उस रास्ते उसे भागना पड़ा। नालंदा का विद्यामंदिर देखते-देखते जनशून्य हो गया। पुस्तकालय कई दिन तक जलता रहा, हथौड़ों की चोट से कई दिन तक मूर्तियाँ टूटती रहीं। केवल दो साधू वहाँ रह गए – प्रधान आचार्य राहुल भद्र और तारापीठ के अनन्य सेवक अक्षोभ्य भैरव।'

– हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास *चारु चंद्रलेख* (1963) से

और तुम रात-भर मा-त-रे-मा-त-रे करती रहो!' सुधना ने मुँह बिदकाकर कहा – 'कौन है यह मा-त...

देख सुधना, हर बात में टाँग नहीं अड़ाते। गाँव के पके हुए अरियासमाजी लड़कों की बोली सीखी है तूने। कुछ समझता भी है? ख़बरदार, जो कभी माँ तारा के नाम ठिठोली की! ताजमनी ने आँखें मूँदकर मन-ही-मन काली की मूर्ति को स्मरण करके कहा – माफ़ करना माँ! बच्चे की बुद्धि ही कितनी!

सुधना ने भी मन-ही-मन फ्रेम में मढ़ी, रक्त-चंदन के छींटों से धुँधली काली माँ की तस्वीर को याद किया – जीभ निकालकर खड़ी है, तो खा लो न मुझे!... दिदिया इतने दिनों से रो-रोकर पूजा करती है, मान-मनौती करती है। लेकिन, माँ तारा तो और रुलाती ही है... रोज़ पंडित जी के बाग़ से अड़हुल फूल ला कर देता हूँ... और क्या चाहिए? ...

–फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास *परती : परिकथा* (1957) से

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक उपन्यास *चारु चंद्रलेख* (1963) और फणीश्वरनाथ रेणु के आंचलिक उपन्यास *परती : परिकथा* (1957) के उपर्युक्त दो अंशों को

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 127

पढ़ते हुए हम यहाँ सबसे पहले कुछेक बिंदुओं पर आगे की चर्चा के लिहाज़ से विचार करेंगे। पहला तो यह कि आचार्य द्विवेदी की औपन्यासिक कृति मूलतः 12वीं और 13वीं सदी के उत्तर भारत की कथा है। उपन्यासकार की अपनी कल्पनाशीलता के अलावा इस औपन्यासिक कृति का आधार तेरहवीं सदी ईस्वी में भारत आए तिब्बती बौद्ध भिक्षु धर्मस्वामी के यात्रा वृत्तांत जैसे ऐतिहासिक दस्तावेज़ों को बनाया गया है। इस उपन्यास के तमाम पात्र और उनसे जुड़ी परिस्थितियाँ काल्पनिक होने के बावजूद एक वास्तविक दौर का चित्रण करते हुए यह ख़ुद अपनी वास्तविकता का भरोसा पूरी कामयाबी से पाठकों को देता है। इसी तरह, रेणु के उपन्यास की कथा के केंद्र में आज़ादी के सात-आठ वर्षों बाद का गाँव परानपुर है। मिथिला के भू-सांस्कृतिक परिक्षेत्र में बसे इस गाँव का परिचय देते हुए उपन्यासकार स्वयं लिखता है कि, 'बहुत उन्नत गाँव है परानपुर। सात-आठ हज़ार की आबादी है। प्रत्येक राजनीतिक पार्टी की शाखा है यहाँ। धार्मिक संस्थाओं के कई धुरंधर धर्मध्वजी इस गाँव में विराजते हैं।...पंडित नेहरू तीन बार पदार्पण कर चुके हैं इस गाँव में। लाहौर कॉन्ग्रेस के बाद पहली बार, दूसरी बार 1936 में चुनाव के दौरे पर और पिछले साल कोसी प्रोजेक्ट देखने आए थे जब...।'[1] वैसे तो *परती : परिकथा* के कथासूत्र उपन्यास के नायक जितेंद्र (या जित्तन) और उसके पतनीदार पिता शिवेंद्र मिश्र से जुड़ कर संक्रमण से गुज़रते इस ग्राम समाज के प्रतिनिधि अंकन को एक दिलचस्प प्रेमकथा में परिवर्तित करते मालूम होते हैं। मगर कोसी अंचल यहाँ सदैव एक स्वतंत्र और संपूर्ण व्यक्तित्व बन कर उपस्थित रहता है। रेणु के ही दूसरे कालजयी उपन्यास *मैला आँचल* की तरह, *परती : परिकथा* में भी, अंचल के भौगोलिक परिवेश से शुरू कर उसका सांस्कृतिक चरित्र, वेश-भूषा, राग-रंग, उत्सव-त्यौहार, और धार्मिक विश्वास, या कहें कि उसकी समग्र नृतत्त्व शास्त्रीय विशिष्टता, अपनी पूरी जीवंतता से इस कथा में हर कहीं मौजूद दिखाई देती है।

इन दोनों औपन्यासिक कृतियों को पढ़ते हुए कोई भी सजग पाठक सहज ही इस स्वीकार्य नतीजे पर पहुँच सकता है कि मिथिला क्षेत्र के निवासियों का देवी तारा की उपासना से एक निश्चित ऐतिहासिक संबंध रहा है। फिर रेणु के उपन्यास में वर्णित नट्टिन टोले की ताजमनी के उदाहरण पर नज़र डालते हुए यह भी लगता है कि देवी तारा केवल मैथिल ब्राह्मणों की आराध्या न हो कर कहीं ज़्यादा बड़े जनसमुदाय के दैनंदिन जीवन और उसकी आस्था का केंद्र बनने की दिशा में अग्रसर हो चुकी हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह कि बीसवीं सदी के मध्य के कोसी अंचल में, 'पके हुए अरियासमाजी' (या पक्के आर्यसमाजी) धर्मध्वज वाहकों की उल्लेखनीय उपस्थिति के बावजूद, 'माँ तारा' की लोकप्रियता में हमें उपरोक्त उपन्यास के हवाले से भी लगातार एक इज़ाफ़ा होता हुआ साफ़ दिखता है। लेकिन, बड़ी हैरत उस समय होती है जब हम ऐन हिंदी पट्टी में अवस्थित मिथिला जैसे एक बेहद महत्त्वपूर्ण भू-सांस्कृतिक परिक्षेत्र के दैनिक अनुभव का अहम हिस्सा बन चुकी इस विशिष्ट धार्मिकता को समझने के

[1] फणीश्वरनाथ रेणु (1957), [2009] : 24.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 128

लिए आधुनिक भारत के इतिहासकारों का रुख़ करते हैं। यहाँ हम पाते हैं कि उत्तर भारत या हिंदी पट्टी पर केंद्रित देशी और विदेशी विद्वानों के तमाम हालिया अध्ययन इस ख़ास ऐतिहासिक विषय पर बिल्कुल मौन हैं! इतना ही नहीं, पिछले कुछ दशकों के दरमियान मिथिला की धार्मिक संस्कृति का अन्वेषण करने वाले नृतत्त्वशास्त्रियों से, या साहित्य आदि दूसरे कुछ अनुशासनों से जुड़े स्थानीय विद्वानों को भी पढ़ते हुए, हमें मिथिला के दैनंदिन जीवन का हिस्सा बन चुकी इस देवी के संप्रदाय और उपासना के इतिहास का कुछ विशेष पता नहीं चलता। यहाँ एक स्वाभाविक सवाल उठता है कि ऐसा क्यों है? संक्षेप में कहें तो सत्तर के दशक से शुरू हुए अंतर-अनुशासनिक तथा उत्तर-संरचनावादी प्रयोगों ने भले ही इतिहास, नृतत्त्व शास्त्र, और साहित्य जैसी विद्याओं की अपनी घेरेबंदी को काफ़ी कुछ कमज़ोर किया है। लेकिन उत्तरी भारत के सामाजिक इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत सामाजिकता के विस्तृत अध्ययनों पर आज भी हमें उनके राजनीति संबंधी विचार का निर्णायक असर दिखता है। शायद यही वजह है कि, 'सामाजिक' या 'धार्मिक' जैसे परस्पर संबद्ध पहलुओं को अपने अध्ययन में शामिल करने वाले समर्थ सामाजिक इतिहासकारों की एक लंबी फ़ेहरिस्त के बावजूद, अभी भी हिंदी पट्टी पर केंद्रित ऐतिहासिक अध्ययनों में धार्मिकता जैसे ख़ास दैनिक अनुभव की वाज़िब नुमाइंदगी की गुंजाइश बाक़ी रहती है।[2] ऐसा नहीं होने से इस क्षेत्र विशेष की सामाजिकता को समझने और समझाने के सबसे बेहतरीन प्रयास भी शायद कमतर ही साबित होंगे। इसी कमी को मद्देनज़र रखते हुए, और मिथिला के आम धार्मिक जीवन में गहराई तक प्रविष्ट हुई भगवती तारा के एक महत्त्वपूर्ण पीठ स्थान की निर्मिति को आधार बना कर, प्रस्तुत आलेख हिंदी पट्टी के इतिहास संबंधी चिंतन में धार्मिकता जैसे बेहद अहम दैनिक अनुभव को रेखांकित भर करने का एक संक्षिप्त प्रयास है।

हिंदुस्तान और दुनिया के दूसरे हिस्सों की ही तरह हिंदी पट्टी में भी ऐसी विवरणात्मक (या 'क्वालिटेटिव'), और परिमाणात्मक (या 'क्वांटिटेटिव'), आधार-सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है जो व्यक्तियों और समूहों के रोज़मर्रा के जीवन से जुड़े विविध पहलुओं का उद्घाटन बख़ूबी करती है। हालाँकि यह हर जिज्ञासु के अपने मस्तिष्क पर निर्भर करता है कि वह उस आधार-सामग्री से अर्थ की निष्पत्ति चाहे तो अपनी ख़ालिस समझ के इस्तेमाल से करे या फिर मानविकी और समाजविज्ञान की कोटियों तथा सिद्धांतों के ज़रिए। आम तौर से 'आधार-सामग्री' कहते ही व्यक्ति या समूह से परे की एक चीज़ का बोध होता है। दूसरी ओर कई विशेषज्ञ यह मानते हैं कि वैयक्तिक और सामूहिक स्मृतियाँ आधार-सामग्री का महत्त्वपूर्ण

[2] एक तरफ़ जहाँ इतिहास लेखन की दृष्टि से 'सामाजिक' और 'सांस्कृतिक' पहलुओं की नज़दीकी ने 80 के दशक से सबाल्टर्न इतिहासकारों के विविध अध्ययनों में एक निश्चित रूपाकार ग्रहण किया है. वहीं दूसरी ओर, अकादमिक दायरे में 'सामाजिक' का विचार भी अपरिवर्तनीय नहीं रहा है. चूँकि कोई पूरी फ़ेहरिस्त देना यहाँ संभव नहीं. फिर भी रणजीत गुहा का क्लासिकल आलेख, और 19वीं सदी के बंगाल का सामाजिक इतिहास प्रस्तुत करता सुमित सरकार का अध्ययन हमारी विवेचना के लिहाज़ से बेहद महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते हैं. साथ ही, तनिका सरकार द्वारा नारीवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत अध्ययन का भी दूरगामी महत्त्व है, रणजीत गुहा (1985) : 1-25; सुमित सरकार (1997); तनिका सरकार (2001).

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 129

भंडार होती हैं, जहाँ से इसकी पुनः प्राप्ति भी संभव है।[3] मैथिल समाज के दैनिक जीवन-जगत में धार्मिकता के तत्त्व को समझने के अपने इस सीमित उपक्रम में हम मुख्य तौर से तीर्थ माहात्म्य जैसे उस रचनात्मक साहित्य रूप का उपयोग करेंगे जो मूलतः तीर्थ यात्रियों के लिए छपी पुस्तिकाओं की शक्ल में तीर्थ स्थलों में बहुत कम क़ीमत पर उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः साहित्यिक स्रोत सामग्री पर आधारित इस शोधपरक आलेख में ऐतिहासिक, पाठ-आलोचनात्मक, और अंतर-पाठ प्रविधियों का उपयोग करते हुए हमारा उद्देश्य आधुनिक दौर में देवी तारा के उस उपासक संप्रदाय के इतिहास को जानने और समझने का रहेगा जिसने न सिर्फ़ मिथिला बल्कि पूरी हिंदी पट्टी को भी अपनी धार्मिकता के ज़ोर से प्रभावित करने का प्रयास किया है। साथ ही, परिवर्तन और निरंतरता की उस प्रक्रिया को समझने की कोशिश भी हम बराबर करेंगे जिसके तहत किसी परंपरा का स्वरूप बदल जाने के बाद भी उसका क्रम जारी रहता है, और बदले हुए सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ में यह एक नई अर्थवत्ता प्राप्त कर लिया करती है।

1.

लेख के प्रारंभ में उद्धृत आचार्य द्विवेदी के उपन्यास अंश से ही अगर इस चर्चा की शुरुआत करें तो पहला सवाल यही उठता है कि क्या हम बौद्धों की आराधिता भगवती तारा और हिंदू शाक्त परंपरा में उपास्य देवी तारा को एक मान सकते हैं? दरअसल, बौद्ध महायान परंपरा की समस्त देवियों में तारा सर्वोपरि हैं। कई बार उन्हें समस्त बुद्धों और बोधिसत्वों की जननी तक कहा जाता है, और प्रथम श्रेणी की एक स्वतंत्र देवी के तौर पर इक्कीस से भी अधिक रूपों में उनकी आराधना होती है। प्राचीन भारत के कुछ इतिहासकारों का ऐसा मत है कि बौद्धों की महायान शाखा में संभवतः छठी सदी ईस्वी के दौरान तारा की उपासना प्रचलित हुई होगी।[4] दूसरी तरफ़, बौद्ध मिथकशास्त्र में उनका संबंध सामान्यतया इस कल्प के प्रधान बोधिसत्व, अवलोकितेश्वर से जोड़ा जाता है। ऐसा माना गया कि आदि बुद्ध से ही पाँच ध्यानी बुद्ध, और अनेक बोधिसत्व, देवियों समेत निर्गत हुए हैं। इन बोधिसत्वों में भी अवलोकितेश्वर और मंजुश्री गुप्तकाल तक काफ़ी लोकप्रिय हो चुके थे। करुणा की मूर्ति कहे गए अवलोकितेश्वर से प्रारंभिक चरण में संबद्ध रही देवी तारा, वज्रयान व तंत्रयान की बढ़ती के साथ-साथ, तांत्रिक बौद्ध मत की सर्वप्रमुख नारी शक्ति के रूप में स्वीकृत हुईं। विद्वानों का विचार है कि आरंभ में उनके दो रूप 'सौम्य' और 'उग्र' प्रकार के रहे होंगे। हालाँकि, पश्चवर्ती बौद्ध मत में अवलोकितेश्वर की ही भाँति तारा को भी 108 अलग-अलग रूपों और नामों से अभिहित किया गया है।[5] सातवीं सदी से तांत्रिक बौद्ध मत के प्रचार प्रसार के साथ देवी तारा के उपासना

[3] प्रशांता रॉय (2011) : 6.

[4] एन. एन. भट्टाचार्य (1999) : 193.

[5] पुष्पेंद्र कुमार (1992) : 48.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 130

गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित तांत्रिक देवी तारा का एक चित्र (अकादमिक और ग़ैर व्यावसायिक उद्देश्य से साभार प्रस्तुत)।

संप्रदाय का विस्तार भी तमाम दूसरे मुल्कों तक हुआ। फिर यह तो सर्वविदित ही है कि देवी तारा को तिब्बत में सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई जहाँ बौद्ध परंपरा में उन्हें 'महा मुक्तिदाता' भी कहा जाता है।

वहीं अपने शाक्त स्वरूप में तारा बहुत हद तक काली से मिलती जुलती हैं। बाजार में उपलब्ध कैलेंडर और अन्य तस्वीरों में काली की ही भाँति तारा का भी चित्रण प्रायः शवरूपी शिव के ऊपर खड़ी, व्याघ्र चर्म से आवृत्त, मुंडमाल पहने, लोल जिह्वा वाली, सर्पों से आभूषित, और चार करों में खड्ग, खप्पर, कर्तरी, और नरमुंड या नीलकमल लिए हुए, नीलवर्ण की, एक उग्र स्वरूप वाली देवी के रूप में हुआ दिखता है। काली की ही तरह तारा का संबंध भी श्मशान और यहाँ प्रज्वलित अग्नि से जोड़ा जाता है। हालाँकि, भक्तों के नज़रिये से इस उग्र स्वरूपा देवी का संबंध महज श्मशान या वैसे ही कुछ दूसरे भयप्रद और

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 131

रूपान्तरणकारी प्रतीकों तक महदूद नहीं। और, देवी तारा के एक बेहद प्रचलित नाम 'तारिणी' (अर्थात 'पार उतारने वाली') से भी हमें ऐसा ही प्रतीत होता है।

देवी तारा के स्वरूप की विशेष चर्चा हमें संस्कृत तांत्रिक साहित्य में मिलती है। और इनकी उपासना भी ज़्यादातर तंत्रोक्त पद्धति से ही होती आई है। कभी सीतामढ़ी का हिस्सा रहे शिवहर के भूमिहार जमींदार परिवार से संबद्ध देव नंदन सिंह ने, 1890 ईस्वी में, *शाक्त प्रमोद* जैसी पद्धति शैली के एक संग्रह ग्रंथ का संस्कृत भाषा में लेखन-संकलन और संपादन किया। इसकी एक हस्तलिखित पांडुलिपि लंदन स्थित ब्रिटिश लाइब्रेरी में भी ईस्वी सन 1894 से संरक्षित है। देव नंदन सिंह ने पहली बार 1891 ईस्वी में इसका मुद्रित संस्करण प्रकाशित किया। 1905 तक आते-आते, कुल 16 स्वतंत्र 'तंत्रों' में विभक्त इस तांत्रिक पूजा व कर्मकांड विषयक संग्रह ग्रंथ के पूरे चार संस्करण वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, से प्रकाशित हो चुके थे। 'शाक्त प्रमोद' की महत्ता इस बात से समझी जा सकती है कि सौ वर्षों से ज़्यादा का समय बीतने के बाद आज भी उच्च श्रेणी के अनेक तांत्रिक साधक और कर्मकांड विशेषज्ञ इसे तांत्रिक उपासना में प्रयुक्त होने वाला एक अनिवार्य प्रामाणिक स्रोत मानते हैं। मिथिला और उसकी परिधि के बाहर भी शाक्त मतावलंबियों द्वारा नित्य पूजा में प्रयुक्त होने वाले इस संग्रह ग्रंथ के पहले दस हिस्से काली, तारा, षोड्शी, भुवनेश्वरी जैसी उन विशिष्ट देवियों को समर्पित हैं जिन्हें दस महाविद्याओं के रूप में जाना जाता है। बाक़ी के 6 हिस्से कुमारीतंत्र, दुर्गातंत्र, शिवतंत्र, गणेशतंत्र, सूर्यतंत्र और विष्णुतंत्र को समर्पित हैं। प्रत्येक 'तंत्र' में देवता विशेष का ध्यान, यंत्र, मंत्र, और तांत्रिक उपासना की विधि के साथ ही स्तोत्र, कवच और शत तथा सहस्रनाम का वर्णन है।

ग़ौरतलब है कि महाविद्या तारा को समर्पित *शाक्त प्रमोद* के द्वितीय तंत्र में उनके जिस 'उग्र-तारा' स्वरूप का वर्णन हमें मिलता है, उसके बाबत बुह्नेमान्न का यह स्पष्ट मत है कि हिंदू तंत्रों ने आरंभिक मध्यकाल में इनकी साधना को बौद्ध शाश्वतवज्र के तांत्रिक ग्रंथ 'महाचीनक्रमा-साधना' से सीधा उठाया है।[6] प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से भी बौद्ध महाचीनक्रमा-तारा के शीश पर पाँच ध्यानी बुद्धों में से एक अक्षोभ्य को स्थापित माना गया है। दिलचस्प बात तो यह है कि हिंदू महाविद्या तारा की प्रतिमाएँ और चित्र भी अक्षोभ्य से अलंकृत होते हैं।[7] वैसे, हिंदू शाक्त संदर्भों में अक्सर इन्हें क्षोभरहित शिव का प्रतीक बताया जाता है। हालाँकि, देव नंदन सिंह के 'शाक्त प्रमोद' में वर्णित उग्र-तारा ध्यान और उपचार पूजा की पद्धति को पढ़ते हुए हम पाते हैं कि यंत्र पूजा के क्रम में देवी के अपने जिस देव परिवार समूह की पूजा का विधान यहाँ किया गया है उसमें न सिर्फ़ शीश के केंद्र में सुशोभित अक्षोभ्य बल्कि वैरोचन और अमिताभ जैसे सदस्य भी प्रमुख रूप से शामिल हैं।[8] इनके नामों

[6] गुद्रून बुह्नेमान्न (1998) : 472-93.

[7] पुष्पेंद्र कुमार (1992) : 38.

[8] राजा देवनंदन सिंह (2013) : 119-120.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 132

से यह स्पष्ट आभास होता है कि उक्त तीनों देव पहले से देवी उग्र-तारा के बौद्ध परिवार का अंग रहे होंगे और बाद में उनके ही साथ इन्हें भी हिंदू शाक्त तांत्रिक संदर्भ में जगह दे दी गई है। तब क्या यह माना जाए कि अपने उग्र-तारा स्वरूप में हिंदुओं की पूजिता रही भगवती तारा वास्तव में बौद्ध देवी महाचीनक्रमा-तारा ही हैं?

ऐसा मान लेना शायद इसलिए भी उचित नहीं होगा क्योंकि सदियों से शाक्तों और तांत्रिकों की उपास्य रही महाविद्या तारा वास्तव में बौद्ध स्रोत से ले कर पुनर्निर्मित की गई एक हिंदू देवी हैं। यही वजह है कि बौद्ध स्रोत से निकाल कर अंततः शाक्त काली-कुल में शामिल कर ली गई देवी तारा का एक गहरा साम्य हमें दक्षिण काली के रूप से दिखता है। लेकिन, भक्तगण इन दोनों शक्तियों के रूप और गुणों में निश्चित वैषम्य भी विशेषकर साधना और उपासना की दृष्टि से मानते हैं। मिसाल के लिए तारा का क़द काली की तुलना में छोटा तथा उनके स्तनों और उदर का आकार अपेक्षाकृत बड़ा होने के कारण तांत्रिक संदर्भों में उन्हें 'खर्वा', 'घटस्तनी' और 'लंबोदरी' जैसे विशेषणों से भी अभिहित किया जाता है।[9] फिर अपने महाविद्या स्वरूप में देवी तारा के एक विशिष्ट वाम-मार्गी साधना पद्धति (अर्थात् 'चीनाचार') से ही प्रसन्न होने की एक सर्व स्वीकृत और व्यापक मान्यता है। ऐसा लगता है कि, बौद्ध स्रोत से निकल कर 'काली-कुल' या महाविद्याओं के समूह का भाग बन जाने के दौरान, इन लोकप्रिय घोररूपा तांत्रिक देवी का मध्यकाल में ही संभवतः अपना एक स्वतंत्र उपासक संप्रदाय भी विकसित हुआ जिसके कुछ चिह्न हमें अकेले तारा की साधना को समर्पित पद्धतियों की बढ़ती में साफ़ नज़र आते हैं।[10] साथ ही, बौद्ध संदर्भों में 'करुणा' के विचार को रूपायित करने वाली और 'उद्धारक' कही गई भगवती तारा को हिंदू संदर्भ में भी 'दयामयी' और 'मुक्तिदायनी' माना गया है। इतना ही नहीं, हिंदू शाक्त तांत्रिक साहित्य में उन्हें भी काली की तरह मूल कारण के रूप में जगत की सर्जक, पालक, और संहारक तक बताया जाता है।

इस बिंदु पर एक वाज़िब सवाल यह उठ सकता है कि जब अन्य देवी-देवताओं (जैसे गणेश, दुर्गा, शिव, विष्णु और सूर्य) की उपासना को भी *शाक्त प्रमोद* में यथोचित स्थान मिला हुआ है तब हम अपना सारा ध्यान सिर्फ़ 'द्वितीय तंत्र' में वर्णित देवी उग्र-तारा के ऊपर ही क्यों केंद्रित कर रहे हैं? इस प्रश्न के जवाब में हम फ़िलहाल बस इतना ही कहना चाहेंगे कि गहराई से देखने पर आप भी यक़ीनन यही पाएँगे कि इन पौराणिक देवताओं की भी पूजा के सिर्फ़ तांत्रिक विधान का ही *शाक्त प्रमोद* में वर्णन है। फिर उससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात तो *शाक्त प्रमोद* में नज़र आने वाला विषय का अपना क्रमवार विभाजन है, जहाँ पहले तो दस महाविद्याओं की उपासना तदोपरांत कुमारी पूजा और उसके बाद ही पंचोपासना का वर्णन हुआ है। क्या यह क्रम विशेष स्वयं ही मिथिला की अपनी धार्मिकता के बारे में बहुत कुछ

[9] रॉबर्ट इ. स्वोबोदा (1986) [1993] : 79.

[10] विकास कुमार भट्टाचार्य (2003) : 167-176.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 133

नहीं कहता? इसीलिए हम असल में एक नितांत ठोस शाक्त-तांत्रिक आधार पर खड़ी मिथिला की धार्मिकता के चंद विशिष्ट पहलुओं पर ही अपना ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। लेकिन इन पहलुओं पर किसी विस्तृत चर्चा से पहले हम यहाँ बाबू देव नंदन सिंह द्वारा *शाक्त प्रमोद* जैसे महत्त्वपूर्ण 'संकलन ग्रंथ' को बाक़ायदा छापे की शक्ल में प्रकाशित करने की वजहों पर भी एक संक्षिप्त चर्चा करना चाहेंगे।

शाक्त प्रमोद के अधुनातन संस्करण की 'प्रस्तावना' लिखते हुए मधु खन्ना अपनी एक सारगर्भित टिप्पणी में यह कहती हैं कि, 19वीं सदी में, शाक्त मतवाद के अलंबरदारों को न सिर्फ़ मुख्यधारा के वैष्णव और शैव जैसे बड़े संप्रदायों से अलग अपनी पहचान को परिभाषित करना था। बल्कि उन्हें अंग्रेज़ी राज के द्वारा व्यवहृत एकरूपीकरण से भी अपनी रक्षा करनी थी। इस सबमें अंचल-केंद्रित शाक्तों की सत्ता का आमतौर से क्षरण हुआ, जैसा कि तांत्रिक शाक्त परंपरा का पहले भी कई बार हो चुका था, जब अपने दृष्टिकोण के पक्षपोषण हेतु उन्हें स्मार्त परंपराओं का सहारा लेना पड़ा।[11] तो क्या स्मार्त परंपरा के अंगों (जैसे गणेश, दुर्गा, शिव, विष्णु और सूर्य की पंचोपासना) की भी तांत्रिक मैथिल शाक्तों द्वारा आम स्वीकृति के पीछे ऐसा ही कोई ऐतिहासिक कारण या दबाव रहा है? हमें इस संभावना से इंकार के लिए निश्चय ही कोई ठोस वजह नहीं दिखती। बहरहाल, 19वीं सदी के अंतिम चरण में अपनी पहचान को परिभाषित करने और इस क्रम में ख़ुद के लिए वैधता पाने का जो माध्यम देव नंदन सिंह ने चुना वो था एक शाक्त-तांत्रिक साधना और कर्मकांड विषयक ग्रंथ के संकलन-लेखन और प्रकाशन का। हालाँकि, एक व्यवस्थित प्रयास के तहत धार्मिक व सांस्कृतिक परंपराओं को पुनर्निर्मित करने, और उसी क्रम में निज की पहचान को व्याख्यायित करते हुए वैधता पाने का कोई दूसरा ज़रिया भी वो बेशक चुन सकते थे। मिसाल के लिए, देवोत्तर या ब्रह्मोत्तर के रूप में भूमि का दान, मंदिरों का निर्माण, या फिर किसी तीर्थ केंद्र की ही स्थापना वे कर सकते थे। किंतु देव नंदन सिंह तो हमें *शाक्त प्रमोद* जैसे बहुस्तरीय पाठ के ज़रिये मुख्यधारा की ब्राह्मणवादी व्यवस्था के समक्ष अपने तांत्रिक शाक्त मत की आग्रहपूर्ण स्वीकारोक्ति करते दिखते हैं। वैसे इस सिलसिले में देव नंदन सिंह को अनूठा मान लेने की हड़बड़ी हमें बिलकुल नहीं करनी चाहिए। क्योंकि, मिथिला में उनके कई निकटवर्ती समकालिक भी दूसरे रास्तों से शायद ऐसा ही कुछ करने का प्रयास कर रहे थे।

2.

पृथक मिथिला प्रदेश और उसकी प्रादेशिक भाषा के रूप में मैथिली और हिंदी दोनों की वकालत करने वाले प्रख्यात कवि स्वर्गीय नागार्जुन ने अपना एक लंबा साक्षात्कार साहित्यकार मनोहर श्याम जोशी को दिया, जो बतौर पुस्तक अंश 1980 के दशक की शुरुआत में पहली बार प्रकाशित हुआ। इस बेहद रोचक साक्षात्कार में नागार्जुन अपने बचपन

[11] देखें, राजा देवनंदन सिंह (2013) : 7-8.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 134

के दिनों की अनेक स्मृतियाँ भी साझा करते हैं। साक्षात्कार के क्रम में नागार्जुन यह बताते हैं कि कैसे 1925 में प्रथमा करने के बाद उन्होंने अपने गाँव के पास ही गोनौली विद्यालय से मध्यमा किया और फिर शास्त्री बनने का इरादा कर वो अध्ययन के लिए मिथिला से काशी चले आए। फिर इसके बाद जैसे ही नागार्जुन की स्मृतियों में बसे चित्र बोलने लगते हैं तो पाठक के सामने 1920 के दशक की काशी अपने एक अलग ही स्वरूप में मूर्तिमान होती है : 'रानियों द्वारा संचालित क्षेत्रों की काशी। मेधावी बटुकों को मुफ़्त भोजन कराने वाली काशी।'[12] यहाँ नागार्जुन बताते हैं कि कैसे उस दौर की काशी में दरभंगा की महारानी लक्ष्मीवती जैसी धनाढ्य मैथिल स्त्रियाँ किसी विद्यार्थी द्वारा की गई छंदबद्ध प्रशस्ति सुनकर प्रसन्न होने पर पाँच रुपये तक इनाम में दे देती थीं। उस समय जब पाँच रुपये का काफ़ी मूल्य हुआ करता था, मैथिली में छंदबद्ध कविताएँ लिखते हुए नागार्जुन (जो तब वैद्यनाथ कहे जाते थे) ने भी कई मौकों पर वह पंचटकिया पुरस्कार जीता। उस दौर की काशी में संस्कृत के विद्यार्थियों की लेखन और वक्तृता जैसी अनेक प्रतियोगिताएँ भी हुआ करती थीं और किशोर वैद्यनाथ उन प्रतियोगिताओं में शिरकत कर अक्सर अढ़ाई-तीन रुपये तक के नक़द पुरस्कार प्राप्त किया करते थे। काशी में बीते उन दिनों को याद करते हुए नागार्जुन आगे यह भी बताते हैं कि कैसे भोजन करने के लिए वे प्रतिदिन दूसरे बटुकों के साथ नेपाली खपरा मोहल्ले में बने तारा मंदिर जाया करते थे। बनारस का यह तारा मंदिर उस वक़्त बनैली की रानी द्वारा संचालित क्षेत्र था और वहाँ पूरे एक सौ आठ छात्रों को नियमित भोजन कराया जाता था।

अपने फ़ील्ड अध्ययन के दौरान मुझे भी साल 2011 में बनारस के नेपाली खपरा स्थित इस तारा मंदिर जाने का अवसर मिला। मैंने पाया कि एक मैथिल पुरोहित का परिवार इस वक़्त भी तारा मंदिर प्रांगण में ही रह रहा है, और उन पुरोहित पर ही देवी तारा मंदिर की नित्य पूजा आदि की ज़िम्मेवारी है। हालाँकि, सुबह की पूजा का समय होने के कारण वे बातचीत के लिए उपलब्ध नहीं हो सके। मगर, मंदिर की दीवार पर लगी सूचना-पट्टी से कुछ ज़रूरी बातों का पता अवश्य चल गया। जैसे कि काशी के इस विख्यात तारा मंदिर का निर्माण संवत् 1972 (या 1915 ईस्वी) में रानी पद्मावती ने करवाया था। रानी पद्मावती मिथिला की बनैली जागीर के राजा लीलानंद सिंह के बेटे और उत्तराधिकारी पदमानंद सिंह की पत्नी थीं। और काशी में इस तारा मंदिर के निर्माण की प्रेरणा उन्हें महिषी निवासी पुण्यदत्त झा से मिली थी।

आगे इस आलेख में हम देवी तारा की उपासना से मिथिला स्थित महिषी गाँव के ऐतिहासिक संबंध पर कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे। अव्वल तो यह समझना ज़रूरी है कि रानी पद्मावती ने शिव की नगरी कही जाने वाली काशी में तारा मंदिर के निर्माण की प्रेरणा को क्यों स्वीकार किया होगा? और फिर उसी तारा मंदिर से संचालित क्षेत्र में सौ से ज़्यादा मेधावी छात्रों को भोजन करवाने जैसे नियमित आयोजनों द्वारा वो आख़िर क्या हासिल करना चाहती थीं? साफ़ है कि, शिवहर के जमींदार परिवार से संबद्ध देव नंदन सिंह और दरभंगा की महारानी

[12] मनोहर श्याम जोशी (1983) : 40.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 135

लक्ष्मीवती की ही तरह, बनैली जागीर से संबद्ध रही पद्मावती भी हमें ऐन बीसवीं सदी में धार्मिक व सांस्कृतिक परंपराओं को निर्मित और पुनर्निर्मित करती तथा इस तरह से निज की पहचान को व्याख्यायित करते हुए वैधता पाने के लिए प्रयासरत दिखती हैं। फिर भी यह सवाल मौजूद रहता है कि अपनी पहचान को सार्वजनिक रूप से व्याख्यायित करने के क्रम में रानी पद्मावती को आख़िर तांत्रिक देवी तारा का ही मंदिर क्यों निर्मित करना पड़ा?

दरअसल, साहित्यकार मनोहर श्याम जोशी को दिए अपने पूर्वोक्त साक्षात्कार में नागार्जुन स्वयं तांत्रिक दीक्षा के प्रसंग पर चर्चा करते हुए यह साफ़ कहते हैं कि : 'तारा हम लोगों की इष्ट है। छिन्नमस्ता के हम आराधक हैं।' मतलब यह कि न सिर्फ़ मैथिल ब्राह्मणों में सामान्य उपनयन से अलग तांत्रिक दीक्षा की भी प्रथा प्रचलित है। बल्कि तारा और छिन्नमस्ता जैसी घोररूपा तांत्रिक देवियाँ यहाँ सदियों से निशिदिन ब्राह्मण गृहों में पूजी जाती रही हैं। हालाँकि, इस बिंदु पर यह भी स्पष्ट कर देना ज़रूरी है कि मिथिला की अपनी दृष्टि तारा और छिन्नमस्ता सहित महाविद्या समूह की सभी तांत्रिक देवियों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित करके देखती है। मिसाल के लिए दरभंगा के कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय से संबद्ध रहे आचार्य आनंद झा इन्हें तीन कोटियों – (1) सौम्य, (2) उग्र, और (3) सौम्योग्र – में विभक्त मानते हैं।[13] आनंद झा जहाँ दस महाविद्याओं में से त्रिपुरसुंदरी, भुवनेश्वरी, मातंगी और कमला को सौम्य स्वरूप वाली देवियाँ मानते हैं। वहीं महाविद्या काली, छिन्नमस्ता, धूमावती और बंगलामुखी को वे उग्र स्वरूप वाली देवियाँ कहते हैं। साथ ही, महाविद्या तारा और भैरवी की पहचान वे सौम्योग्र स्वरूप वाली देवियों के रूप में करते हैं।

मिथिला में देवी तारा का सौम्योग्र स्वरूप माने जाने के संबंध में आनंद झा का यह स्पष्ट मत है कि : 'द्वितीय महाविद्या तारा में उग्रता के साथ सौम्यता का आभास इसलिए भी मिलता है कि इनके प्रभेदों के अंदर एक प्रभेद उग्रतारा भी आती हैं और एक नील सरस्वती भी। इन दोनों के अंदर प्रथम में उग्रत्व विशेषण तभी सार्थक हो पाएगा जब कि तारा के किसी प्रभेद को अनुग्र अर्थात् सौम्य भी माना जाए। साथ ही उनके एक प्रभेद का नाम नील सरस्वती है, यह नामकरण भी तब तक संगत नहीं हो सकता जब तक उन्हें सौम्य भी न मान लिया जाए। क्योंकि सरस्वती शुक्ल न हो कर नील ही क्यों न हो जाएँ, विद्या की अधिष्ठात्री होने के कारण उनमें सौम्यता माननी ही होगी।' वैसे तो मिथिला में हिंदुओं द्वारा देवी तारा के कुल तीन अलग रूपों (उग्रतारा, नील सरस्वती और एकजटा) की पूजा होती है। लेकिन, देवी महाचीनातारा (या उग्र-तारा) के विपरीत, भगवती नील सरस्वती का अपना नाम इतनी आसानी से उनके बाह्य आयातित होने का पता नहीं देता। हालाँकि, नेपाल में देवी तारा के उग्र तथा नील रूपों की उपासना बौद्ध और हिंदू दोनों ही करते दिखते हैं।[14] फिर तांत्रिक ग्रंथों के अनुसार देवी नील सरस्वती का सिद्ध स्थान भी 'नीलरम्यक' अर्थात चीन में स्थित है।[15] बहरहाल, ऐसा

---

[13] आचार्य आनंद झा (1979) : 69.

[14] प्रबोध चंद्र बागची (1939) : 42.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 136

लगता है कि देवी तारा अपने सौम्योग्र स्वरूप के चलते, और विद्या की भी अधिष्ठात्री मान लिए जाने से, मैथिल समाज और विशेषकर मैथिल ब्राह्मणों की इष्टदेवी के रूप में लंबे समय से पूजित होती आई हैं। न सिर्फ़ नागार्जुन के उपरोक्त कथन का यही आशय है बल्कि पद्मावती द्वारा निर्मित तारा मंदिर में स्थापित सौम्योग्र प्रतिमा और उनके द्वारा विद्या की अधिष्ठात्री अपनी इष्टदेवी की आराधना हेतु संचालित अन्न क्षेत्र से शताधिक विद्यार्थियों के नियमित भोजन की व्यवस्था को भी हम यूँ ही समझ सकते हैं।

वैसे, मैथिल ब्राह्मणों के वैयक्तिक, पारिवारिक और सार्वजनिक जीवन में भी संपन्न होने वाले बहुविध संस्कारों, चर्याओं या उपासना के अंगों और उपांगों में से कइयों को परंपरागत ब्राह्मण रूपों से घिरा होने के बावजूद स्मार्त नहीं कहा जा सकता।[16] खान-पान से ही शुरू करें तो बहुसंख्यक मैथिल ब्राह्मण अपने दैनिक जीवन में मांस-मछली खाते हैं। साथ ही नागार्जुन के हवाले से हम पहले ही यह देख चुके हैं कि कैसे मैथिलों में दो उपनयन संस्कार होते हैं - एक वैदिक, दूसरा तांत्रिक। मतलब यह कि वैदिक उपनयन में जहाँ प्रत्येक उपनीत ब्राह्मण को गायत्री मंत्र की दीक्षा दी जाती है। वहीं एक उपनीत मैथिल गायत्री दीक्षा के अतिरिक्त फिर तांत्रिक मंत्र की दीक्षा भी पाता है। इस तांत्रिक मंत्र दीक्षा के क्रम में आयु, लिंग अथवा कुल का बंधन नहीं होता। इसमें कोई भी समगोत्री महिला या पुरुष जिसे पहले से मंत्र मिला हो उपनीत के कान में बोल कर उसे बीज मंत्र दे सकता है। ग़ौरतलब है कि इस मंत्र-दीक्षा में प्रदान किए जाने वाले बीज-मंत्र साधारणतया तांत्रिक देवियों या प्रमुख महाविद्याओं में से एक के ही होते हैं। जिन देवी के बीज-मंत्र की दीक्षा दी जाती है वे ही मंत्र-दीक्षा संपन्न मैथिल की इष्टदेवता होती हैं। मंत्र लेना पारिवारिक स्तर पर एक ख़ास उत्सव जैसा होता है। मैथिल वाग्धारा में 'मंत्र अंटाना' जैसे विशेष प्रयोग पर रोशनी डालते जयधारी सिंह अपने पिता के समय का उल्लेख करते हुए यह भी लिखते हैं कि, *पुरश्चर्यार्णव* आदि कुछ तांत्रिक ग्रंथ के 'अकयह' तथा 'ऋणधन' – चक्र से महाविद्याओं के ख़ास बीज मंत्र कुल के रीति-रिवाज के अनुसार दिए जाते थे।'[17] अधिकांश दीक्षित मैथिल ब्राह्मणों की इष्टदेवी काली या महाविद्या तारा ही होती हैं। कोई-कोई इष्ट के रूप में भुवनेश्वरी या कमला की उपासना भी करते हैं। ऐसा नहीं कि विष्णु और शिव जैसे देवों की पूजा दीक्षित मैथिल नहीं करते। मगर इष्ट देवी के यंत्र या कुण्डलिनी शिला को बीच में रखने और इसके बायीं व दाहिनी तरफ़ विष्णु तथा शिव को प्रतिष्ठित करने के उपरांत ही वे इनकी पूजा करते हैं।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी ज़रूरी है कि दीक्षित मैथिल को इष्ट की मंत्रोपासना का अधिकार तो मंत्र-दीक्षा से मिल जाता है। मगर उन्हें वाममार्गी उपासना क्रम से अपने इष्ट को पूजने का अधिकार बिना किसी समर्थ गुरु से शाक्ताभिषेक पाए बिना नहीं होता। फिर

---

[15] भागीरथप्रसाद त्रिपाठी (1980) : 141-143.

[16] जयधारी सिंह (1979) : 146-147.

[17] वही : 146.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 137

वामाचारी अर्थ में 'तांत्रिक' कहलाना भी अच्छा नहीं माना जाता, नतीजतन, ज़्यादातर मैथिल शाक्त दक्षिणमार्गी और सर्वस्वीकृत तांत्रिक विधियों से ही इष्ट देवता की पूजा और तत्संबंधी अनुष्ठानों में संलग्न रहते देखे जाते हैं। श्मशान-साधना और चक्रार्चन जैसी उत्कट वाममार्गी क्रियाओं में रत होने के बजाय गृहस्थ मैथिल शाक्त अक्सर अपने इष्ट देवता की प्रसन्नता के लिए छागबलि और कुमारीपूजा जैसे अभिहित तांत्रिक पटल ही अपनाते हैं।

आम मैथिल गृहस्थ के दैनंदिन जीवन में गृह देवता की उपासना के महत्त्व को साफ़ दर्शाने वाला तत्त्व घरों में बनी पीड़ी या पीठ पर देवता का अधिष्ठान है। मैथिल शब्दावली में गृह देवता या कुल देवता के लिए 'गोसांउनि' शब्द प्रचलित है। अधिकतर किसी तांत्रिक देवी की ही प्रतिष्ठा मैथिल गृहस्थ गोसांउनि के रूप में किया करते हैं। मैथिल गोसांउनि शब्द का संस्कृत के 'गो-स्वामिनी' या मध्य बंगाली के 'गोशानी' से क़रीब का संबंध हो सकता है। परंतु अन्य देवियों की तरह मैथिल कुल देवता या गोसांउनि की नित्य पूजा और उनसे जुड़े विशेष कर्मकांड को किसी भी दूसरी जगह कर पाना संभव नहीं होता। आमतौर से गोसांउनि पछवरिया घर या घर के पश्चिमी हिस्से में स्थित गोसांउनिक घर में अपने ग़ैर-प्रतिमा रूप में स्थापित होती हैं। वे लाल रेशमी या साटन कपडे से बने आँचर, अढत और बिंदी आदि से सुशोभित होती हैं। नियम से इनके नित्य पूजा की ज़िम्मेवारी घर में विवाहित महिला सदस्यों की होती है।

जनाना हिस्से में बने गोसांउनिक घर और भनसाघर (या पाकशाला) का एक-दूसरे से कैसा क़रीबी और पवित्रतामूलक धार्मिक संबंध परंपरागत ब्राह्मण गृहों में रहा होगा इसका कुछ आभास हमें इतिहासकार सदन झा के एक शीघ्र प्रकाश्य रोचक आलेख से भी होता है।[18] मगर क्या गोसांउनिक रूप में शक्ति की पूजा सिर्फ़ मैथिल ब्राह्मण परिवार ही किया करते हैं ? ग़ौरतलब है कि मिथिला में तकनीकी तौर से द्विज जातियों में शुमार न किए जाने वाले कायस्थ भी यहाँ की स्थापित धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं के उतने ही मज़बूत संरक्षक और साझेदार हैं जितने कि मैथिल ब्राह्मण। फिर, गोसांउनिक घर और भनसाघर को स्थानिक संदर्भ में मैथिल गृहक्षेत्र और मैथिल समाज के सर्वाधिक कम चर्चित या अध्ययन किए गए पहलुओं के बतौर चिह्नित करते हुए सदन झा एक दूसरे महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर भी इशारा करते हैं। ग्रियर्सन द्वारा मैथिली से अंग्रेज़ी में अनुदित सलहेस कथा के हवाले से झा का उपरोक्त आलेख दरअसल हमें घोर रूपा देवी असावरि के एक नितांत ग़ैर-ब्राह्मण संदर्भ में गोसांउनि रूप से पूजित होने का पता देता है।

दूसरी ओर सदियों से मिथिला जैसे ख़ास भू-सांस्कृतिक परिक्षेत्र के दैनिक जीवन का अभिन्न हिस्सा रहे गोसांउनिक घर को हम बदलते दौर के साथ धीरे-धीरे सामान्य पूजा घर में तब्दील होता हुआ भी पाते हैं। ऐसा नहीं है कि मैथिल घरों में पहले पूजा घर नहीं हुआ करते थे। मगर सामान्य पूजा घर और गोसांउनि या गोसांउनिक घर में एक स्पष्ट भेद हुआ करता था।

---

[18] सदन झा, अप्रकाशित.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 138

सामान्य पूजा घर की तरह गोसांउनिक घर की स्थापना कभी भी और कहीं भी नहीं की जा सकती थी। संपत्ति के बँटवारे या किसी दूसरी तरह से स्थानांतरण जैसी परिस्थितियों में नया गोसांउनि निर्मित करने के लिए एक परिवार को ख़ासा आयोजन करना पड़ता था। वैसे नया गोसांउनिक घर बनाने के बजाय पुराने गोसांउनि से ही अपने धार्मिक कृत्यों के लिए संबद्ध रहने का भी निर्णय कोई परिवार कर सकता था। परंतु नई जगह पर गोसांउनि को प्रतिष्ठित करने के लिए विशेषकर एक श्रोत्रिय ब्राह्मण परिवार को पहले पाँच तीर्थों की पवित्र मिट्टी और पाँच नदियों से पवित्र जल लाने की व्यवस्था करनी होती। फिर संपूर्ण विधि-विधान से गोसांउनि और उनके देव परिवार की प्रतिष्ठा पछवरिया घर में भनसाघर से लगे हिस्से में की जाती। सबसे अहम बात तो यह कि उसी स्थान पर बिला नागा घर की ज़िम्मेवार महिला सदस्यों को उनकी पूजा करनी होती थी। लेकिन आधुनिकता के असर से बड़े पैमाने पर लगातार जारी उत्प्रवासन और पारंपरिक ढाँचे में आए बिखराव के बीच, आज हम मैथिल गोसांउन पूजा की नियमित व्यवस्था को प्रभावित करने वाली अनेक तब्दीलियों को भी साफ़ देख सकते हैं।[19] हालाँकि गोसांउन पूजा की परंपरा में परिलक्षित होने वाले हालिया बदलावों के बावजूद हम यह मान सकते हैं कि मिथिला के ज़्यादातर घरों में सदियों से गोसांउनि की पूजा का रिवाज़ रहा आया है।

वैसे तो मैथिल ब्राह्मणों में अधिकतर देवी कालिका ही कुल देवता के रूप में पूजित होती आई हैं। मगर गोसांउनि रूप में कुछ मैथिल ब्राह्मण तारा उपासना या अन्य महाविद्या की उपासना भी करते हैं। फिर अन्य जाति समूहों के अपने दूसरे गृह या कुल देवता हैं। ज़ाहिर है कि इन सब देवताओं की सम्मिलित संख्या सैकड़ों में है। हालाँकि उत्तर भारत के दूसरे भू-सांस्कृतिक परिक्षेत्रों से हम मिथिला का वैशिष्ट्य इसके अपने ख़ास देव समूह के संदर्भ में भी देख सकते हैं। मिसाल के लिए मिथिला के विराट देव समूह में राम की मानीख़ेज़ अनुपस्थिति का ज़िक्र करते हुए तारानंद वियोगी स्पष्ट करते हैं कि, यहाँ 'सबके कुलदेवता अलग-अलग होते थे। यह कुल मूल और वंश परंपरा पर निर्भर करता था। ऐसे कुल देवताओं की संख्या सैकड़ों में थी। फिर, कुलदेवता के सहायक देवी देवता होते, जिनकी स्थापना 'गोसांउनि घर' में की गई होती थी। इनकी संख्या हज़ारों में थी। मगर, इनमें राम नहीं थे। लाखों देवी देवताओं के लिए मिथिला के पास जगह थी, पर राम के लिए कोई जगह नहीं थी।'[20] दरअसल, मिथिला की जातीय स्मृति में अपनी कन्या मानी जाने वाली सीता का दुखद दांपत्य आज भी सुरक्षित है।[21] इसीलिए लोक परंपरा में न केवल उक्त विषय से संबंधित अनेकों गीत कवित्त आदि मिलते हैं। बल्कि, लोग सीता के कष्टों के लिए राम के दुर्बल व्यक्तित्व को दोषी मानते हुए आमतौर से उनकी पूजा नहीं करते।

---

[19] सदन झा, अप्रकाशित.

[20] तारानंद वियोगी (2016) : 185-186.

[21] उषा किरण ख़ान (1986) : 119.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:15 Page 139

हालाँकि, आधुनिक काल में जब पुरानी धार्मिक मान्यताओं को कुछेक नई धर्म धारणाओं से बदला जा रहा था मिथिला में लक्ष्मीनाथ गोसाईं (1787-1872) जैसे रामोपासक सन्यासियों का भी प्रादुर्भाव हुआ। असल में बीसवीं सदी के शुरुआती दशक में बनैली की रानी पद्मावती को काशी में तारा मंदिर के निर्माण की प्रेरणा देने वाले मैथिल ब्राह्मण पुण्यदत्त झा के गाँव महिषी से बेहद क़रीब ही बसे बनगाँव को लक्ष्मीनाथ गोसाईं ने अपनी गतिविधियों का केंद्र बनाया। हज़ारों भक्तिपद रचने, कीर्तन मंडली बना कर भगवद भजन करने, और रामनवमी तथा कृष्ण जन्माष्टमी जैसे वैष्णव पर्वों को कोसी अंचल में लोकप्रिय बनाने के अलावा लक्ष्मीनाथ गोसाईं ने अपने स्तर से आधुनिक मिथिला में व्याप्त कई सामाजिक बुराइयों पर भी चोट करने का प्रयास किया। इन सब गतिविधियों और उनकी व्यक्तिगत साधना के नतीजे में लक्ष्मीनाथ गोसाईं को तो एक सिद्ध महापुरुष के तौर से व्यापक प्रतिष्ठा मिली ही साथ ही उनके आराध्य रहे दशरथ नंदन राम की स्वीकार्यता में भी निश्चित इज़ाफ़ा हुआ। वैसे मिथिला के तमाम गाँव और क़स्बों में जहाँ कहीं राम और लक्ष्मण को सीता सहित देवालयों में स्थान मिला उन सभी धार्मिक स्थलों को 'जानकी मंदिर' कह कर ही पुकारने की एक स्थापित परंपरा दिखती हैं।[22] किंतु सीता जन्म-स्थली के रूप में विख्यात सीतामढ़ी के पास स्थित पुनौरा धाम और जानकी कुंड को तो निःसंदेह मिथिला के सर्वप्रमुख तीर्थ स्थलों में से एक माना जा सकता है।

हालाँकि उन्नीसवीं सदी में मिथिला के चंदा झा और लालदास द्वारा रचित दो अलग-अलग *मैथिली रामायण* लोकप्रियता के लिहाज़ से तुलसीदास के अवधी *रामचरित मानस* का मुक़ाबला भले न कर पाई हों।[23] लेकिन मिथिला की बहुसंख्यक आबादी अगर आज भी राम को प्रमुख देवता मान कर पूजने के बजाय शक्ति की उपासना में ही प्रवृत्त दिखती है तो इसमें आश्चर्य क्या? क्योंकि, श्री राम जन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र द्वारा 5 अगस्त, 2020 को आयोजित 'भूमि पूजन' के अवसर पर ख़ुद श्री राम के कुल देवता रूप में भगवती काली की विशेष पूजा का प्रसारण तो हम सब ख़बरिया चैनलों के ज़रिये स्वयं ही देख चुके हैं। मगर, ग़ौर करने की एक बात यह भी है कि सदियों से कुछ मैथिल परिवार अपने यहाँ कुल देवता रूप में महाविद्या तारा की ही नियमित स्थापना और उपासना करते आए हैं। जैसे प्रख्यात विद्वान महामहोपाध्याय गंगानाथ झा और डॉ. अमरनाथ झा के मूल कुल 'पलिवार महिषी' से संबद्ध मैथिल गृहस्थों की गोसांउनि तारा ही रही आई हैं। ध्यान दें कि सहरसा जिले से लगभग 18 किलोमीटर की दूरी पर स्थित महिषी गाँव को मिथिला में देवी उग्रतारा की एकमात्र पीठस्थली के लिए भी जाना जाता है। कहना होगा कि हिंदुस्तान में देवी उग्रतारा के मंदिर कम ही हैं। हमें अधिकतर नेपाल और तिब्बत में ही महाचीनातारा रूप से देवी के इस उग्र स्वरूप की प्रतिष्ठा मंदिरों या फिर बौद्ध मठों में की गई दिखती है। मिसाल के लिए नेपाल की काठमांडू घाटी में

---

[22] शंकर दयाल सिंह (1986) : 56.

[23] इंद्र नारायण झा (1984) : 39.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:16 Page 140

स्थित संखु के वज्रयोगिनी मंदिर में देवी अपने उग्रतारा रूप में प्रतिष्ठित मिलती हैं। वैसे, नेपाल की सीमा से ही सटे सहरसा के गाँव महिषी में तमाम निवासी न केवल देवी उग्रतारा को आठवीं सदी के सुविख्यात स्थानीय दार्शनिक मण्डन मिश्र की गोसांउनि और आराध्या मानते आए हैं। बल्कि, मिथिला के इस प्रसिद्ध तीर्थस्थल में स्थापित देवी उग्रतारा की प्रतिमा का संबंध राम के कुलगुरु ऋषि वशिष्ठ से भी जोड़ा जाता है।

3.

गोरखपुर के गीताप्रेस की प्रसिद्धि के बारे में तो हम सब जानते ही हैं, दशकों से छपे हुए धार्मिक साहित्य को घर-घर पहुँचाने में हिंदी पट्टी के इस विख्यात प्रकाशन गृह की क्या और कैसी भूमिका रही है यहाँ उसे दोहराने की ज़रूरत शायद नहीं है। पिछले कई सालों से यही गीताप्रेस *दशमहाविद्या* शीर्षक से एक 24 पेजी पुस्तिका का प्रकाशन भी लगातार कर रहा है। गीताप्रेस ने पंद्रह रुपये मूल्य की इस सचित्र पुस्तिका को अपने दूसरे प्रकाशनों से अलग चिह्नित करने के लिए इसका कोड 1278 निर्दिष्ट किया है। प्रेस द्वारा अब तक इस पुस्तिका की लाखों प्रतियों को अपने हिंदी पाठकों के लिए मुद्रित किया जा चुका है। संवत 2073 (या 2016-2017 ईस्वी) में कुल 8000 प्रतियों के साथ इस पुस्तिका का 'पचीसवाँ पुनर्मुद्रण' प्रकाशित किया गया। पुस्तिका के शीर्षक और मूल्य से भी यह आभास होता है कि इसका प्रकाशन ख़ासकर मध्यम और निम्न आय वर्ग के उन हिंदी पाठकों को ध्यान में रख कर किया गया है जो महाविद्या समूह की असाधारण तांत्रिक शक्तियों के बारे में जानने के विशेष इच्छुक हो सकते हैं। साथ ही, हिंदी पट्टी के दशमहाविद्या उपासकों की सुविद्या का ध्यान रखते हुए प्रेस ने 'मुण्डमालतंत्र' में वर्णित 'महाविद्यास्तोत्र' को भी पुस्तिका के 23 वें और आख़िरी पृष्ठ पर प्रकाशित किया है।

हमारे इस मौजूदा अध्ययन के लिहाज़ से 'तारा' शीर्षक के साथ गीताप्रेस की *दशमहाविद्या* पुस्तिका में छपे दूसरे अध्याय का ख़ास महत्त्व है। क्योंकि, भगवती तारा के स्वरूप, उनके तीन रूपों, और तांत्रिक उपासना पद्धति आदि का एक संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करने के अलावा इस अध्याय में हिंदी पाठकों को उग्रतारा पीठ संबंधी एक महत्त्वपूर्ण जानकारी भी दी गई है। पुस्तिका का 'पाठ' बताता है कि, 'बिहार के सहरसा जिले में प्रसिद्ध 'महिषी' ग्राम में उग्रतारा का सिद्धपीठ विद्यमान है। वहाँ तारा, एकजटा तथा नीलसरस्वती की तीनों मूर्तियाँ एक साथ हैं। मध्य में बड़ी मूर्ति तथा दोनों तरफ़ छोटी मूर्तियाँ हैं। कहा जाता है कि महर्षि वशिष्ठ ने यहीं तारा की उपासना करके सिद्धि प्राप्त की थी।'[24] स्पष्ट है कि पुस्तिका का यह पाठ महिषी में महर्षि वशिष्ठ द्वारा तांत्रिक देवी तारा की उपासना करके सिद्धि लाभ करने जैसी लोकव्यापी मान्यता के आधार पर यहाँ स्थित उग्रतारा स्थान को एक 'सिद्धपीठ' का दर्जा देता है। हालाँकि, आसाम और बंगाल में भी स्थित देवी तारा के कुछ दूसरे पीठ या

[24] देखें, दशमहाविद्या, संवत 2073 : 5.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:16 Page 141

तीर्थ स्थल ठीक ऐसी ही मान्यता के कारण हिंदुस्तान भर में विख्यात हैं। मगर हम पाते हैं कि पुस्तिका के पाठ में उनका कोई उल्लेख नहीं किया गया है। फिर पुस्तिका के इस पाठ का एक दूसरा रोचक पहलू यह भी है कि इसमें शेष नौ महाविद्याओं के किसी अन्य पीठ या संबद्ध तीर्थ स्थल का भी ज़िक्र नहीं मिलता। इस सबके बावजूद, हिंदी पट्टी के विशेष संदर्भ में गीताप्रेस की इस सचित्र धार्मिक पुस्तिका में छपा महिषी के उग्रतारा सिद्धपीठ का उपरोक्त वर्णन क्यों महत्त्व रखता है(?), यह समझना क़तई मुश्किल नहीं। दूसरे शब्दों में कहें तो पुस्तिका के हवाले से भी यह साफ़ है कि हम हिंदी पट्टी के पटल पर एक बेहद महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थल के रूप में महिषी के उग्रतारा पीठ को स्थापित मान ले सकते हैं।

दूसरी तरफ़, मानवशास्त्री माखन झा मिथिला के तमाम शाक्त-तांत्रिक सिद्धपीठों के बारे में यह लिखते हैं कि : 'शाक्त मत से जुड़े इन पवित्र केंद्रों के नामों और अवस्थिति से हमें यह भास होता है कि ये बड़ी संख्या में मिथिला क्षेत्र में फैले हुए हैं, और मिथिला के लोगों की गहरी आस्था और विश्वास शक्ति संप्रदाय में है।'[25] हालाँकि, माखन झा और उनके सहयोगियों ने 1980 के मध्य में मिथिला के कई प्रमुख देवी स्थानों या शक्तिपीठों का मानवशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है।[26] मगर, अपने विभिन्न शोधपरक आलेखों में महिषी के उग्रतारा पीठ का उल्लेख भर कर देने के अलावा इस महत्त्वपूर्ण धार्मिक केंद्र का कोई व्यवस्थित अध्ययन वे पेश नहीं करते हैं।[27] इस गंभीर अकादमिक कमी को दूर करने की दिशा में पहला सुव्यवस्थित प्रयास हमें गंगानाथ झा द्वारा हालिया प्रकाशित 'बिहार का मंडन-उग्रतारा तीर्थ स्थान : एक मानवशास्त्रीय अध्ययन' शीर्षक आलेख में दिखता है।[28] परंतु सांस्कृतिक समन्वय के संदर्भ में प्रस्तुत गंगा नाथ झा के इस शोधपरक आलेख की कुछ प्रमुख कमियों और सीमाओं को भी हम यहाँ साथ ही रेखांकित कर सकते हैं।

असल में 1950 के दशक से प्रारंभ हुए व्यवस्थित मानवशास्त्रीय अध्ययनों की बात करें तो देशी-विदेशी अध्येताओं ने कई धार्मिक स्थलों पर केंद्रित अपने आलेख प्रकाशित किए। इसके बाद एल. पी. विद्यार्थी की प्रविधियों का इस्तेमाल करते हुए 1960 के दशक से माखन झा को हम पहले जनकपुर और फिर रतनपुर के धार्मिक संकुलों का व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत करते हुए देखते हैं। एल. पी. विद्यार्थी और माखन झा की ही स्थापित परंपरा का अनुसरण करते हुए गंगा नाथ झा भी महिषी के धार्मिक केंद्र को एक विशेष धार्मिक खंड और वृहत्तर धार्मिक भूगोल का हिस्सा मानते हुए यहाँ बौद्ध एवं हिंदू धर्म-संस्कृतियों के परस्पर समन्वय की विवेचना प्रस्तुत करते हैं। अपने विद्वत्तापूर्ण आलेख में गंगा नाथ झा महिषी के उग्रतारा तीर्थ की पहचान एक ऐसे 'आदिम पीठ' के रूप में करते हैं, जिसकी स्थापना के बाद 'इस क्षेत्र में अनेक सिद्धपीठों की स्थापना हुई'। साथ ही वे मौजूदा उग्रतारा मंदिर में प्रचलित

[25] माखन झा के मूल अंग्रेज़ी पाठ का हिंदी अनुवाद यहाँ लेखक द्वारा किया गया है.

[26] माखन झा (1982) : 83.

[27] माखन झा (1985).

[28] गंगानाथ झा (2005) : 121-139.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:16 Page 142

तांत्रिक पूजा की परंपरा को इस क्षेत्र के पाल कालीन बौद्ध इतिहास से भी जोड़ कर देखते हैं।[29] हालाँकि, इस शोधपरक आलेख की आलोचनात्मक परीक्षा करते हुए हम पाते हैं कि अव्वल तो ऋषि वशिष्ठ से संबंधित बेहद महत्त्वपूर्ण अनुश्रुति की इसमें पूरी तरह से अनदेखी की गई है। फिर विद्यार्थी की शोध प्रविधि और नमूने का अनुसरण करने के दौरान मानवशास्त्री गंगानाथ झा कई जटिल ऐतिहासिक परिघटनाओं का यथोचित विश्लेषण प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। सबसे बड़ी कमी तो यह कि झा का अध्ययन उन तमाम ऐतिहासिक प्रक्रियाओं, परिस्थितियों और शक्तियों के बारे में भी कोई नई जानकारी हमें नहीं देता, जिनके सम्मिलित प्रभावों के परिणामस्वरूप मिथिला के सार्वजनिक या आम धार्मिक जीवन में हिंदू महाविद्या रूप से तारा की तांत्रिक उपासना का दाख़िला संभव हो सका।

आधुनिक मिथिला के धार्मिक इतिहास पर शाक्त मतावलंबियों और ख़ासकर तारा उपासकों का कैसा असर रहा है इस बात की ओर अपने आलेख में हम तमाम विवरणों के ज़रिये पहले भी इशारा करते आए हैं। ज़ाहिर है कि हिंदी पट्टी के इस विशिष्ट भू-सांस्कृतिक परिक्षेत्र में मातृ रूप से शक्ति की उपासना का एक लंबा इतिहास रहा है। फिर मैथिल ब्राह्मणों के व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन में भी दृष्टिगत होने वाली शाक्त-तांत्रिक उपासना का स्वरूप हमें परिक्षेत्र की धार्मिकता को न सिर्फ़ रोज़मर्रा के संदर्भ में समझने की सहूलियत देता है। बल्कि, इसके माध्यम से हमने यह भी समझने का प्रयास किया कि कैसे काली और तारा जैसी तांत्रिक दशमहाविद्या समूह की देवियाँ अनेक मैथिल गृहों में सदियों से पुरुषों और महिलाओं द्वारा समान रूप से पूजी जाती रही हैं। लेकिन एक बेहद महत्त्वपूर्ण सवाल जो अब तक अनुत्तरित रहा आया है वो यह कि, व्यक्तिगत साधना में इष्ट रूप से या कई कुल मूलों में गोसांउनि रूप से भी उपास्य रही भगवती तारा 'कब' और 'कैसे' एक निजी धार्मिक क्षेत्र का अतिक्रमण कर मिथिला के सार्वजनिक या आम धार्मिक जीवन में प्रविष्ट हो जाती हैं ? कहना नहीं होगा कि हम विवेचना के माध्यम से आगे इसी बुनियादी प्रश्न का जवाब तलाशने की कोशिश करेंगे।

4.

हिंदू देवता सिर्फ़ अवतार ही नहीं बल्कि प्रतिमा रूप में भी प्राप्य या सुलभ होते हैं। मंदिरों और तीर्थों में उपास्य रूप से उपलब्ध विभिन्न देव प्रतिमाएँ भक्तों या दर्शनार्थियों का न सिर्फ़ उनके इष्ट से एक नज़दीकी रिश्ता जोड़ती और मज़बूत किया करती हैं। बल्कि पूजा के क्रम में गहनतम भावोद्गारों की बाह्य अभिव्यक्ति भी इन्हीं के कारण संभव हो पाती है।[30] शायद इसलिए भी वर्ष 2014 के जुलाई महीने में संपन्न अपने फ़ील्ड अध्ययन के दौरान जब मैं पहली दफ़ा महिषी स्थित उग्रतारा तीर्थ पहुँचा तो जिस चीज़ ने सबसे पहले यहाँ मेरा ध्यान आकृष्ट किया वो मंदिर से बिल्कुल क़रीब ही लगे कुछ विज्ञापन होर्डिंग थे।

---

[29] गंगानाथ झा (2005) : 130-131.

[30] डायना. एल. एक्क (1981), (2007) : 46.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:16 Page 143

दरअसल, सीमेंट ब्रांड एसीसी के फाउंडेशन टू रूफ़ (यानी एफ2आर) प्रोडक्ट का विज्ञापन करते और आस-पास ही लगाए गए ये कुल दो होर्डिंग साधारण नहीं मालूम होते थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे मिथिला के इस प्रसिद्ध तीर्थ स्थल में दूर-दूर से आने वाले श्रद्धालुओं का ध्यान रख कर कंपनी द्वारा इन्हें विशेष तौर से बनवाया गया हो। क्योंकि इन दोनों विज्ञापन होर्डिंगों पर न किसी स्थानीय दुकानदार का नाम या पता छापा गया था और न किसी बड़े वितरक का। लेकिन महिषी पीठ में स्थापित तारा मूर्ति की तस्वीर और सीमेंट कंपनी के अपने ब्रांड लोगो के अतिरिक्त इन विज्ञापन होर्डिंगों में से एक पर दुर्गा मंत्र और दूसरे पर दुर्गा स्तुति को हिंदी में प्रमुखता से छापा गया था। साफ़ ज़ाहिर था कि उन दोनों होर्डिंगों पर महाविद्या तारा की पहचान पौराणिक देवी दुर्गा के रूप में की जा रही है। इनको देखने के बाद बतौर एक शोधार्थी ज़ेहन में यह सवाल उठना भी लाज़िमी था कि अपने आर्थिक हित साधने के लिए प्रयासरत एक व्यावसायिक समूह ऐसा कैसे कर रहा है? क्या दुर्गा रूप में देवी उग्रतारा की शिनाख़्त इन विज्ञापनों में भूलवश की गई थी? या कि अश्विन नवरात्र पूजा के बड़े जुटान को नज़र में रख कर लगाए गए ये दोनों व्यावसायिक विज्ञापन भी उस ख़ास अवसर पर दूर-दराज से यहाँ आने वाले आम दर्शनार्थियों के ही धार्मिक दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित कर रहे थे?

स्थानीय सूत्रों से पता चला कि महिषी के इस तीर्थ में अश्विन नवरात्र के दौरान शक्ति स्वरूपा देवी उग्रतारा की विशिष्ट पूजा-अर्चना की एक लंबी परंपरा सदियों से चली आ रही है। दरभंगा राज के दिनों में तो कुछ राजा स्वयं भी नवरात्र की पूरी अवधि यहीं बिताते हुए देवी की इस पूजा में श्रद्धापूर्वक भागीदारी किया करते थे। आजकल हर नवरात्र यहाँ होने वाली विशेष पूजा, मंदिर प्रांगण में किए जाने वाले *दुर्गा सप्तशती* पाठ, और कुमारी भोजन जैसे आयोजनों में महिषी तथा आसपास के ग्रामवासियों और बाहर से आने वाले तीर्थ यात्रियों की भी भागीदारी बड़ी संख्या में हुआ करती है। साथ ही, महिष-मर्दिनी दुर्गा के संबंध से इस प्राचीन गाँव का नाम 'महिष्मती' पड़ने और कालांतर में उसके 'महिषी' रूप में प्रचलित होने जैसी एक रूढ़िबद्ध धारणा भी जानने में आई।[31]

महाकवि विद्यापति ठाकुर (1374-1460) के लिखे दुर्गोत्सव पद्धति से संबंधित संस्कृत ग्रंथ *दुर्गाभक्तितरंगिणी* का मिथिला और बंगाल दोनों में ही एक समान आदर और प्रभाव है। हालाँकि, कुछ लोग आज भी यह मानते हैं कि बंगाल के रघुनंदन भट्टाचार्य (15वीं-16वीं सदी) ही वो पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मध्यकाल में तांत्रिक पद्धति से दुर्गोत्सव की प्रवर्तना की। मगर इस प्रचलित मान्यता का खंडन करते हुए मैथिल इतिहासकार यह तर्क देते हैं कि रघुनंदन के दौर से भी पहले मिथिला और दूसरी जगहों पर लिखे गए कुछ ग्रंथों में इस पूजा पद्धति का विस्तृत वर्णन हमें मिलता है ।[32] जो भी हो इतना तो तय है कि पंद्रहवीं सदी में महाकवि विद्यापति द्वारा अपने आश्रयदाता ब्राह्मण राजवंश के निर्देश पर प्रस्तुत *दुर्गाभक्तितरंगिणी* की

[31] इंद्र नारायण झा (1984) : 184.

[32] उपेंद्र ठाकुर (1964) : 32.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:16 Page 144

महिषी में भगवती उग्रतारा की शिनाख़्त दुर्गा रूप में करता एसीसी सीमेंट कंपनी का एक विज्ञापन।

तांत्रिक पद्धति के अनुरूप ही नवरात्रि के दौरान मिथिला में दुर्गा की पूजा होती आई है। पर दुर्गोत्सव पद्धति संबंधित इस ग्रंथ की दीर्घकालीन मैथिल स्वीकृति को हम ऐतिहासिक दृष्टि से कैसे देख और समझ सकते हैं? असल में इस वृहत नैबंधिक ग्रंथ के परिवर्तन-मूलक विधानों की तांत्रिक मैथिल शाक्तों द्वारा आम स्वीकृति पर रौशनी डालते जयधारी सिंह यह साफ़ सुझाते हैं कि, 'पूर्व-मीमांसकों से अथवा स्मार्त आचार्यों से डरकर तांत्रिक साधक वृंद [ने] ऐसे समन्वयों की स्थापना की कि वामोपचार की अतियों से बचते हुए तांत्रिक विचारों की तथा कुछ अंश तक तांत्रिक आचारों की भी रक्षा संभव हो सके।'[33] कतिपय ऐतिहासिक समन्वयों के बारे में सिंह की यह महत्त्वपूर्ण उक्ति उस वक़्त और भी मौजूँ लगने लगती है जब हम महिषी उग्रतारा पीठ के पुरोहित द्वारा लिखे और प्रकाशित *श्री उग्रतारा माहात्म्य दर्शन* जैसे एक निहायत अहम 'पाठ' को दृष्टिगत करते हैं।

हम जानते हैं कि संस्कृत वाङ्मय में तीर्थ माहात्म्यों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। ऐसे सभी माहात्म्य ग्रंथ अपने संस्कृत पाठकों के निमित्त विभिन्न तीर्थों से संबंधित उत्पत्ति कथाओं, पवित्र स्थलों, देवी-देवताओं, पूजा और आचार पद्धतियों आदि का संकलन प्रस्तुत करते आए हैं। धार्मिक पहलू से इन ग्रंथों की ख़ासी अहमियत होने के अलावा ऐतिहासिक अध्ययनों की दृष्टि से भी इनका काफ़ी महत्त्व होता है। पर अक्सर कुछ विशेष तीर्थों या धर्मस्थलों से संबंधित प्राचीन संस्कृत ग्रंथ नहीं भी मिलते हैं। ऐसी परिस्थिति में या दीगर वजहों से भी संचालित होकर कई बार अर्वाचीन धार्मिक विशेषज्ञ अपनी ओर से किन्हीं माहात्म्य ग्रंथों की अवतारणा किया करते हैं। बहुधा ऐसे माहात्म्य छापे की शक्ल और एक सस्ते पुस्तिकाकार

[33] जयधारी सिंह (1979) : 147.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:16 Page 145

संस्करण में तीर्थ यात्रियों के लिए काफ़ी कम क़ीमत पर उपलब्ध हुआ करते हैं। कहना नहीं होगा कि सस्ती छपाई, आधुनिक भाषा में निबद्ध होने, और एक अर्वाचीन धार्मिक विशेषज्ञ द्वारा प्रस्तुत किए जाने पर भी इन नवीन माहात्म्यों की अपनी धार्मिक अहमियत कम नहीं होती। साथ ही इनका शोध-संबंधी वास्तविक मूल्य भी इनकी कम क़ीमतों से क़तई निर्धारित नहीं होता।

बहरहाल, तीर्थ यात्रियों के लिए ख़ालिस हिंदी में प्रकाशित *श्री उग्रतारा माहात्म्य दर्शन* की अगर हम बात करें तो पुस्तिका के लेखक-प्रकाशक तीर्थानंद झा उर्फ़ बच्चा जी इसके 'प्राचीन धर्मग्रंथों, देवी पुराण, इतिहास, बौद्ध धर्मग्रंथ आपण निकाय (?), परंपरागत लोक कथा और वर्तमान साक्ष्य के आधार पर' लिखे जाने का दावा करते हैं।[34] दिलचस्प बात यह है कि शक्ति तत्त्व की दृष्टि से परस्पर संबद्धता होने पर भी माहात्म्य का अपना 'पाठ' दुर्गा सप्तशती में वर्णित नवदुर्गाओं और तांत्रिक दसमहाविद्याओं को एकरूप या एकमेक करके नहीं देखता : '।।।दसमहाविद्या तत्त्व वास्तव में नवदुर्गा तत्त्व का पूर्वार्द्ध है'; तथा, 'दसमहाविद्या सृष्टि की भोगाभिमुखी शक्ति है और नवदुर्गा मुक्ति अभिमुखी शक्ति है।'[35] स्पष्ट है कि एसीसी सीमेंट कंपनी द्वारा महिषी में लगाए गए विज्ञापनों के उलट माहात्म्य का यह रोचक पाठ दुर्गा तत्त्व की यहाँ न सिर्फ़ अलग से पहचान कर रहा है, बल्कि महाविद्या तत्त्व की प्रतिष्ठा भी यह 'भोगाभिमुखी शक्ति' (या प्रकारांतर से भोगप्रदायनी देवियों) के रूप में करने का प्रयास करता है। हालाँकि, महाविद्याओं के एक ही साथ 'भुक्ति-मुक्ति प्रदायनी' दोनों होने की मान्यता भी पूर्ण स्वीकृत है। फिर, महाविद्या तारा के तो विशेष रूप से एक मुक्तिदायिनी देवता होने की व्यापक मान्यता है। मगर विरोधाभासों में न उलझते हुए यहाँ हमें शायद इस बात पर ही तवज्जो देनी चाहिए कि माहात्म्य का अपना दृष्टिकोण क्या इसके लक्षित पाठक वर्ग की अपेक्षाओं से तो निर्धारित नहीं हो रहा है?

स्वाभाविक रूप से माहात्म्य के लक्षित पाठक विभिन्न जातियों और वर्गों से जुड़े वो आम तीर्थयात्री और दर्शनार्थी हैं जो हिंदी पट्टी के तमाम हिस्सों से इस प्रसिद्ध देवी स्थान पर अपनी समस्त लौकिक-अलौकिक कामनाओं से जुड़ी याचनाएँ लिए हाज़िर होते हैं। अतः सभी तीर्थ यात्रियों और दर्शनार्थियों को एक साथ लक्षित करता माहात्म्य का यह बहुस्तरीय पाठ हमें एक तरफ़ तो दुर्गा तत्त्व से भिन्न भोगाभिमुखी शक्तियों के रूप में महाविद्या तत्त्व की प्रतिष्ठा करता दिखता है। वहीं दूसरी तरफ़, ख़ुद शिव पत्नी सती की कथा और उनके ही श्रीमुख से निःसृत वचनों के माध्यम से यही पाठ देवी तारा सहित बाक़ी सभी महाविद्याओं की उपासना को अभीष्ट उपलब्धि; पुरुषार्थ चतुष्ट्य यानी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति; और, मारण, मोहन, उच्चाटन आदि तांत्रिक षट्कर्मों तक में सिद्धि देने वाला भी बताता है।[36] दरअसल, *महाभागवत* और *बृहदधर्म-पुराण* में वर्णित दसमहाविद्याओं की उत्पत्ति-कथा के

---

[34] तीर्थानंद झा : 'प्रस्तावना'.

[35] तीर्थानंद झा : 21.

[36] तीर्थानंद झा : 22-23.

ही तर्ज़ पर माहात्म्य के पाठ में भी यज्ञ के अवसर पर पिता दक्ष के घर जाने को आतुर हुई सती अपने पति शिव द्वारा रोके जाने से क्रुद्ध हो कर उनके समक्ष दसमहाविद्या स्वरूप का प्रदर्शन करती हैं। माहात्म्य के कथाक्रम में उक्त 'महादर्शन' से भयाक्रांत हुए शिव द्वारा इन दसों देवियों की उपासना का महत्त्व पूछने पर उपरोक्त फलश्रुति का वर्णन स्वयं सती मुख से किया गया है। वैसे महिषी स्थित उग्रतारा स्थान का जहाँ तक प्रश्न है तो माहात्म्य का पाठ इसे एक ही साथ 'शक्तिपीठ', 'सिद्धपीठ', और 'तंत्रपीठ' के रूप में प्रस्तुत करता दिखता है।

असल में, शक्तिपीठों के उद्भव के संबंध में यह पौराणिक कथा प्रसिद्ध है कि सतयुग में किसी समय प्रजापति दक्ष ने बृहस्पति नाम के यज्ञ का आयोजन किया। इसमें उन्होंने अपनी पुत्री सती और जामाता शिव को छोड़कर बाक़ी सभी देवगणों और ऋषियों को आमंत्रित किया। पिता के यज्ञ की ख़बर सुन कर शिव के मना करने पर भी सती अपने पितृगृह पहुँची, किंतु दक्ष ने सती का स्वागत करने के बजाय उनके पति शिव की निंदा करना प्रारंभ कर दिया। तब दक्ष के मुँह से पति शिव की निंदा सुनकर अत्यंत क्रोधित हुई सती ने यज्ञ की अग्नि में ही कूद कर अपने प्राण त्याग दिए। उधर नारद और गणों से सती की मृत्यु का वृत्तांत सुन कर रौद्र रूप में आए शिव भी दक्ष के यहाँ पहुँचते हैं। यहाँ वे परिजनों सहित दक्ष को मार कर उस यज्ञ का विध्वंस कर देते हैं। इसके बाद मृत सती की देह को कंधे पर लिए शोकमग्न शिव उद्धत भावदशा में निरर्थक विचरण करने लगते हैं। शिव के इस अस्वाभाविक व्यवहार से पैदा हुई अव्यवस्था की स्थिति को समाप्त करने के लिए स्वयं विष्णु अपने सुदर्शन चक्र से सती के अंग-प्रत्यंगों को अनेक टुकड़ों में काट देते हैं। सती के कटे हुए शरीरावयव और आभूषण धरती पर जहाँ-जहाँ गिरे, वहाँ-वहाँ शक्तिपीठों की प्रतिष्ठापना होने जैसी एक लोकव्यापी मान्यता है। *देवी भागवत* में एक सौ आठ ऐसे पीठों का उल्लेख मिलता है। परंतु अलग-अलग ग्रंथों में इन शक्तिपीठों की संख्या और नाम के लिहाज़ से एकरूपता प्रायः नहीं दिखती।[37] जो भी हो पर आम जनमानस में यह धारणा दृढ़ है कि इन तमाम शक्तिपीठों में देवी ख़ुद अपने एक भैरव के साथ भक्तों के लिए पाषाणमयी मूर्ति के रूप में अवस्थान करती है। हालाँकि, महिषी को शक्तिपीठ बताता 'श्री उग्रतारा माहात्म्य दर्शन' का पाठ यह दावा करता है कि, 'भगवती उग्रतारा की प्रतिमा वहाँ पर है, जहाँ भगवती सती का वामनेत्र (तारा) का निपात हुआ था।' मगर, माहात्म्य के इस दावे की पुष्टि शक्तिपीठों का नामोल्लेख करने वाले किसी भी अन्य ग्रंथ से नहीं होती। शायद इसलिए भी एक 'सिद्धपीठ' के रूप में महिषी के उग्रतारा तीर्थ की पहचान कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

हम जानते हैं कि गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित *दशमहाविद्या* पुस्तिका का पाठ महिषी में ऋषि वशिष्ठ के द्वारा देवी तारा की उपासना और सिद्धि लाभ करने की लोकव्यापी मान्यता के आधार पर यहाँ स्थित उग्रतारा स्थान को एक 'सिद्धपीठ' का दर्जा देता है। साथ ही हम इस तथ्य से भी वाकिफ़ हैं कि मानवशास्त्री गंगा नाथ झा द्वारा प्रकाशित उग्रतारा तीर्थ के हालिया

[37] राजेंद्र प्रसाद भट्ट (1980) : 149.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:16 Page 147

अध्ययन में ऋषि वशिष्ठ से संबंधित इस बेहद महत्त्वपूर्ण अनुश्रुति को पूरी तरह अनदेखा किया गया है। हालाँकि, 2014 में इस तीर्थ स्थल का अध्ययन करने के दौरान मैंने पाया कि यहाँ न सिर्फ़ आगंतुक दर्शनार्थियों की आम सूचना हेतु मंदिर के मुख्य प्रवेश-द्वार पर ही 'वशिष्ठाराधिता श्री उग्रतारा शक्तिपीठम्' जैसा एक स्पष्ट उल्लेख लिखा दिखता है। बल्कि, उसी प्रवेश द्वार के ठीक सामने स्थित 'वशिष्ठ-आश्रम' में ऋषि वशिष्ठ की एक ध्यान मुद्रा में बैठी प्रतिमा भी अर्चना के निमित्त स्थापित है। फिर ऋषि वशिष्ठ और उनके ही द्वारा आराधित मानी जाने वाली देवी तारा की मूर्ति के संदर्भ में एक बेहद रोचक आख्यान माहात्म्य का पाठ भी प्रस्तुत करता है।

श्री उग्रतारा माहात्म्य दर्शन का पाठ कहता है कि ब्रह्मर्षि वशिष्ठ को लोकपितामह ब्रह्मा से गायत्री मंत्र की दीक्षा प्राप्त हुई जिसके बाद इस मंत्र का जप और तपश्चर्या करते हुए उन्हें कई सिद्धियाँ मिलती चली गईं। फिर एक दिन वशिष्ठ ने योगबल से देखा कि ख़ुद ब्रह्मा वर्षों से किसी और ही शक्ति का जप तथा ध्यान करते आ रहे हैं। वशिष्ठ इस अलौकिक शक्ति का रहस्य जानने की इच्छा से ब्रह्मलोक पहुँचते हैं। वहाँ वशिष्ठ की जिज्ञासा सुनने के पश्चात ब्रह्मा उन्हें बताते हैं कि वो दस महाविद्याओं में द्वितीया यानी आदिशक्ति तारा की सतत उपासना करते हुए उन्हीं के अनुग्रह से चौदह भुवनों की रचना और चारों वेदों की व्याख्या किया करते हैं। उनके अलावा विष्णु और शिव भी तारा की ही कृपा से तत्त्व ज्ञान पा कर सृष्टि के उपरांत जगत का पालन तथा प्रलय काल में इसका संहार किया करते हैं। स्वयं सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के मुख से महाविद्या तारा की महिमा का ऐसा बखान सुन कर वशिष्ठ भी तारा विद्या की सिद्धि के इच्छुक हो जाते हैं। और ब्रह्मा से ही बीजमंत्र पा कर ऋषि वशिष्ठ तारा साधना के लिए असम के कामगिरी पर्वत पहुँचते हैं। यहाँ वर्षों तक सात्विक विधि से तपस्या और जप करने के बाद भी जब कोई परिणाम नहीं निकलता तो वशिष्ठ एक बार फिर ब्रह्मा के पास जाकर उन्हें अपनी विफलता के बारे में बताते हैं। इस पर ब्रह्मा उन्हें शांत चित्त से तारा समाराधना जारी रखने का उपदेश देकर वापस साधना स्थल लौट जाने को कहते हैं। पुनः कामगिरी आ कर वशिष्ठ पूरी तन्मयता से साधना में जुट जाते हैं। मगर काफ़ी समय बीतने पर भी जब तारा विद्या की सिद्धि उन्हें नहीं होती तो क्रोध में आ कर ऋषि वशिष्ठ तारा के बीज मंत्र को ही शाप दे बैठते हैं। वशिष्ठ के इस कृत्य से संपूर्ण सृष्टि में हाहाकार मच जाता है। सभी देवगण ब्रह्मा के पास पहुँचकर उनसे तत्काल तारा विद्या को ऋषि के शाप से छुड़ाने की प्रार्थना करते हैं। जिसके बाद ब्रह्मा भी वशिष्ठ को बुला कर अविलंब तारा बीज के शाप मोचन का आदेश देते हैं। इसी समय वहाँ उपस्थित शिव ऋषि वशिष्ठ की कमियाँ उजागर करने के बाद उन्हें तारा की तांत्रिक साधना सीखने के लिए मिथिला जा कर विदेह जनक को अपना गुरु बनाने का सुझाव देते हैं। तब तारा बीज का शापोद्धार करने के उपरांत तंत्रदीक्षा और उचित मार्गदर्शन पाने के लिए वशिष्ठ जनक के पास पहुँचते हैं। गुरु के रूप में जनक मिथिला में उनका पूर्णाभिषेक और यथेष्ट मार्गदर्शन करते हैं। फिर जनक चीनाचार पटल से तारा सिद्धि और दर्शन-लाभ के लिए वशिष्ठ को महाचीन (तिब्बत) में अघोर-रूद्र रूपी बुद्ध-विष्णु के पास

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:16 Page 148

उग्रतारा मंदिर का मुख्य प्रवेश द्वार जहाँ देवी मूर्ति के वशिष्ठ आराधित होने का उल्लेख मिलता है

जाने का निर्देश देते हैं। हिमालय के पार्श्व में स्थित महाचीन पहुँचने पर जब ऋषि वशिष्ठ को अघोर रूपी बुद्ध-विष्णु के दर्शन का लाभ मिलता है तो वे देखते हैं कि अनेक कामातुर सुंदरियों से घिरे बुद्ध-विष्णु सुरापान में रत हैं। निर्बाध विलास का ऐसा दृश्य देखते ही वशिष्ठ के मन में बुद्ध-विष्णु के प्रति गहन शंका उत्पन्न होती है। उसी समय एक आकाशवाणी के माध्यम से स्वयं देवी तारा वशिष्ठ को यह सूचित करती हैं कि वास्तव में वो वाममार्ग की इसी चीनाचार पद्धति से प्रसन्न होती हैं और उनकी साधना का रहस्य तथा आचार पृथ्वी पर सिर्फ़ अघोर रूप बुद्ध-विष्णु ही जानते हैं। इसलिए अकारण इधर-उधर भटकने के बजाय बुद्ध-विष्णु से समुचित मार्गदर्शन प्राप्त कर अगर ऋषि वशिष्ठ उनकी समाराधना करें तो ही वे उन पर प्रसन्न होंगी। इस आकाशवाणी को सुन कर वशिष्ठ के हृदय में आस्था जगती है और वे बुद्ध-विष्णु के समीप जा पहुँचते हैं। पहले तो ऋषि वशिष्ठ अघोर रूपी बुद्ध-विष्णु से एक अनार्ष और दुरूह आचार-क्रिया को ले कर अपने भीतर जारी द्वंद्व का ज़िक्र करते हैं। किंतु बुद्ध-विष्णु उन्हें समझाते हैं कि भय, लज्जा, ग्लानि और घृणा आदि अष्टपाशों को त्यागकर पंचमकारों का सेवन करते हुए अघोर क्रिया करना ही मौलिक रूप से चीनाचार है। फिर सप्ताक्षरी तारा मंत्र की दीक्षा देने के साथ ही बुद्ध-विष्णु ऋषि वशिष्ठ को अघोर क्रम में श्मशान साधना, शव साधना, और चिता साधना के पटल भी सिखाते हैं। इसके बाद महाचीन में ही वाममार्गी और चीनाचार की विधियों से तारा साधना में रत हुए वशिष्ठ को एक रात भगवती का महादर्शन उपलब्ध होता है। इसी समय वशिष्ठ स्वयं पर प्रसन्न हुई देवी तारा से वरदान रूप में नित्य के चीनाचार और चक्रपूजा में सहगामिनी होने का निवेदन करते हैं। तारा वशिष्ठ को इस शर्त के साथ उनका यह इच्छित वर प्रदान करती हैं कि जिस क्षण वे भय, लज्जा, ग्लानि तथा घृणा आदि किसी भी अष्टपाश में आबद्ध होंगे तत्काल ही देवी मानवी स्वरूप का त्याग कर

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:16 Page 149

शिलामयी रूप से जगत पूजिता हो जाएँगी। इस सिद्धि के पश्चात् शक्ति रूप में तारा को साथ लिए वशिष्ठ तत्कालीन महिषी पहुँचते हैं। यहाँ भगवती की प्रेरणा से वे उसी स्थान पर अपना आश्रम निर्मित करते हैं जहाँ पहले सती के वामनेत्र का निपात हुआ था। ऋषि वशिष्ठ अपने इस आश्रम में दिवा जप तथा हवन और रात्रि में पंचमकार (यानी मद्य, मीन, मांस, मुद्रा, और मैथुन) से संयुक्त चीनाचार विधि से तारा को प्रसन्न करते हैं। लेकिन वशिष्ठ के ऐसे अनार्ष कर्मकांड देख दूसरे ऋषि उनसे घृणा करने लगते हैं। फिर एक दिन जब वशिष्ठ अपने आश्रम में देवी को मद्य अर्पित कर रहे होते हैं उसी दौरान बाहर एकत्रित कुछ ऋषिगण उनके कृत्यों पर टीका-टिप्पणी करने लगते हैं। तब इष्ट देवता और स्वयं अपने बारे में कहे जा रहे अपमानजनक वाक्यों को सुनकर वशिष्ठ क्षण भर के लिए विचलित हो जाते हैं। ऋषि को इस भाँति मद-मोह में फँसता देख देवी भी अपना मानवी रूप छोड़कर तत्क्षण शिलामयी हो जाती हैं। भगवती के शिलामयी होने से विक्षिप्त दशा में पहुँचे वशिष्ठ अपने प्राण त्याग देने को आतुर होते हैं। उस वक़्त देवी ऋषि को पुनः अपने दर्शनलाभ के लिए अष्टपाश से सर्वथा मुक्त हो शिवत्व प्राप्त करने का आदेश एक आकाशवाणी के माध्यम से देती हैं। भगवती की आज्ञा के अनुसार शिवत्व की साधना के लिए अन्यत्र प्रस्थान करने से पूर्व ऋषि वशिष्ठ यह घोषणा करते हैं कि कोई साधक अगर इस पीठ का दर्शन नहीं करता और वाम मार्ग से तारा को नहीं पूजता तो किसी प्रकार की सिद्धि उसे नहीं मिलेगी।

दरअसल माहात्म्य में वर्णित 'सिद्धपीठ' के प्रादुर्भाव की उपरोक्त कथा का आधार रूद्रयामल, ताराहस्य, और महाचीनाचारक्रम जैसे संस्कृत तांत्रिक ग्रंथों में प्राप्त होने वाला ऋषि वशिष्ठ संबंधी एक महत्त्वपूर्ण वृत्तांत है। इसी तंत्रोक्त वृत्तांत के चलते बीसवीं सदी की शुरुआत में अनेक भारतविदों ने यह धारणा रखी कि वामाचारी पद्धतियों का सीधा संबंध तारा पूजन से है। और, आरंभिक मध्यकाल में वशिष्ठ नामधारी कोई तंत्र साधक भगवती तारा की तांत्रिक साधना से संबंधित इन बाह्य आयातित पद्धतियों को चीन से भारत लाए थे।[38] हालाँकि, एक ध्यान देने योग्य तथ्य यह भी है कि संस्कृत तांत्रिक साहित्य में प्राप्त तारा साधक वशिष्ठ की महाचीन यात्रा का वृत्तांत मिथिला का ज़िक्र कहीं भी नहीं करता। मगर उसी वृत्तांत का माहात्म्य के पाठ रूप से हुआ पुनर्कथन कई नए तत्वों को एक अलहदा अंदाज़ में पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। फिर चाहे वो महाचीन में 'नील सरस्वती नदी (यांगसीटी क्यांग) के तट पर जहाँ आज भी शक्तिस्थल और मंदिर है' वशिष्ठ को तारा का महादर्शन ठीक 'रात्रि के 10 बजे' मिलने जैसे अतिरंजित विवरण हों। या कि मिथिलावासी जनक को तारा साधक ऋषि का तांत्रिक गुरु बताने और महिषी में वशिष्ठ आराधिता तारा के शिलामयी हो जगत पूजिता बनने जैसे एकाधिक क्षेपक। परंतु इतना तो तय है कि तंत्रोक्त वृत्तांत का एक पुनर्कथन करता माहात्म्य का पाठ महिषी स्थित तीर्थ स्थान को सफलतापूर्वक ऐसे 'तंत्रपीठ' के बतौर स्थापित कर देता है जहाँ ऋषि वशिष्ठ की उद्घोषणा के अनंतर तांत्रिक पद्धति से भगवती तारा

[38] रामा प्रसाद चंदा (1916) : 141-142.

की पूजा होती आई है : 'तांत्रिक पद्धति में बाममार्ग और चीनाचार की परंपरा प्रचलित है।'[39] साथ ही, तारा साधक वशिष्ठ से संबंधित तंत्रोक्त वृत्तांत के माहात्म्य द्वारा प्रस्तुत इस पुनर्कथन में मिथिला की अपनी सामूहिक स्मृति और एक ठोस शाक्त तांत्रिक भित्ति पर निर्मित इसकी विशिष्ट धार्मिकता की भी झलक बखूबी मिलती है। मिसाल के लिए ब्रह्मा द्वारा वशिष्ठ को पहले गायत्री और फिर भगवती तारा का बीज मंत्र दिए जाने जैसे एक मिथकीय वर्णन में अगर हमें मैथिल समाज में लंबे समय से प्रचलित दो उपनयनों की परंपरा का एक स्पष्ट आभास मिलता है, तो वहीं दूसरी ओर वाममार्गी और चीनाचार की पद्धतियों से तारा साधना में दत्त हुए ऋषि वशिष्ठ पर आक्षेप करने वाले ऋषियों में भी हम पूर्व-मीमांसक और स्मार्त परंपरा समर्थकों की एक झलक साफ़ देख सकते हैं। फिर सबसे रोचक पहलू तो यह कि राजा जनक को जहाँ मिथिला की इस सामूहिक स्मृति में तांत्रिक साधना के आचार्य रूप से प्रतिष्ठित किया गया है, वहीं महाचीन (या तिब्बत) और नेपाल की पहचान 'अथर्ववेदानुगामी' देशों के रूप में की गई है। ज़ाहिर है कि इस तरह मिथिला और इसके बृहत्तर धार्मिक भूगोल में तांत्रिक आचारों को एक ही साथ बेहद प्राचीन और पूर्णतः वेद सम्मत सिद्ध करने का प्रयास हमें माहात्म्य के पाठ में प्रत्यक्ष रूप से दिखता है।

संदर्भ

आचार्य आनंद झा (1979), 'छिन्नमस्तातत्त्व ' ब्रजवल्लभ द्विवेदी और रेवा प्रसाद द्विवेदी (सं.) *सन्मार्ग : तंत्र विशेषांक*, 26 जुलाई, वर्ष 34, अंक 186 : 69-71.

इंद्र नारायण झा (1984), *मिथिला दिग्दर्शन*, विद्यापति परिषद् , रामगढ़.

उपेंद्र ठाकुर (1964), *स्टडीज़ इन जैनिज़्म ऐंड बुद्धिज़्म इन मिथिला*, द चौखंबा संस्कृत सीरीज़ ऑफ़िस, वाराणसी.

उषा किरण ख़ान (1986), 'सीता जनम बिरोगे गेल', सच्चिदानंद वात्स्यायन (सं.) *जन जनक जानकी*, वत्सल फाउंडेशन, नई दिल्ली : 119.

एन. एन. भट्टाचार्य (1999), 'द कल्ट ऑफ़ तारा इन हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव', एन. एन. भट्टाचार्य और अमर्त्य घोष (सं.) *तांत्रिक बुद्धिज़्म : सेंटेनियल ट्रिब्यूट टू डॉ. बेनोयतोश भट्टाचार्या*, मनोहर, दिल्ली : 190-207.

गंगानाथ झा (2005), 'बिहार का मंडन-उग्रतारा तीर्थ स्थान : एक मानवशास्त्रीय अध्ययन', द *ज़र्नल ऑफ़ द एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया*, खंड 54 (1) : 121-139.

गुद्रून बुह्नेमान्न (1998), 'द गॉडेस महाचीना क्रमा-तारा (उग्र-तारा) इन बुद्धिस्ट ऐंड हिंदू तांत्रिज़्म' *बुलेटिन ऑफ़ द स्कूल ऑफ़ ओरिएण्टल ऐंड अफ़्रीकन स्टडीज़*, खंड 59 (1-3) : 472-93.

जयधारी सिंह (1979), 'तांत्रिक साधना के मैथिल रूप', ब्रजवल्लभ द्विवेदी और रेवा प्रसाद द्विवेदी (सं.) *सन्मार्ग : तंत्र विशेषांक*, 26 जुलाई, वर्ष 34, अंक 186 : 146-147.

डायना एल. एक्क (1981), (2007), *दर्शन : सीइंग द डिवाइन इमेज इन इंडिया*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.

तनिका सरकार (2001), *हिंदू वाइफ़, हिंदू नेशन : कम्युनिटी, रिलिजन, ऐंड कल्चरल नैशनलिज़्म*, परमानेंट ब्लैक, दिल्ली.

[39] तीर्थानंद झा : 'प्रस्तावना'.

05Kamal_Kumar Mishra_Layout 1 22-02-2024 15:16 Page 151

तारानंद वियोगी (2016), 'जीवन क्या ज़िया', *तद्भव*, वर्ष 4, अंक 2 (पूर्णांक 33) : 164 -274.

तीर्थानंद झा, *श्री उग्रतारा माहात्म्य दर्शन*, श्री बच्चा जी, सहरसा.

दशमहाविद्या, गीताप्रेस, गोरखपुर, पचीसवाँ पुनर्मुद्रण सं. 2073 /2016-17.

पुष्पेन्द्र कुमार (1992) *तारा :* द *सुप्रीम गॉडेस*, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली.

प्रबोध चंद्र बागची (1939), (1975), *स्टडीज़ इन द तंत्राज़*, पार्ट-1, युनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता, कलकत्ता.

प्रशांता रॉय (2011), *प्रत्याहा : एवरीडे लाइफ़ वर्ड*, आई. डी. एस. के, कोलकाता.

फणीश्वर नाथ रेणु (1957), (2009), *परती : परिकथा*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.

भागीरथप्रसाद त्रिपाठी (1980), 'श्याम सरस्वती का सिद्ध स्थान - चीन' रेवा प्रसाद द्विवेदी और कमलेश दत्त त्रिपाठी (सं.) *सन्मार्ग : आगम विशेषांक*, 12 अगस्त, वर्ष 35, अंक 203 : 141-143

मनोहर श्याम जोशी (1983), *बातों बातों में*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.

माखन झा (1982), *सिविलाइज़ेशनल रीजंस ऑफ़ मिथिला ऐंड महाकोशल*, कैपिटल पब्लिशिंग हॉउस, दिल्ली.

माखन झा (1985), *डायमेंशन्स ऑफ़ पिल्ग्रिमेज : ऐन एन्थ्रोपोलॉजिकल एपरेजल* (सं.), इंटर-इंडिया पब्लिकेशंस, नई दिल्ली.

रणजीत गुहा (1985) 'द करियर ऑफ़ ऐन एंटी-गॉड इन हैवेन ऐंड ऑन अर्थ', अशोक मित्रा (सं.), द *ट्रूथ यूनाइटस : एस्सेज इन ट्रिब्यूट टू समर सेन*, सुवर्णरेखा, कलकत्ता : 1-25.

राजा देवनंदन सिंह (2013) *शाक्त प्रमोद,* मधु खन्ना के साथ संपादन, तंत्रा फाउंडेशन, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान ऐंड डी. के. प्रिंटवर्ड प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली.

राजेंद्र प्रसाद भट्ट (1980), 'शाक्त-महापीठ' रेवा प्रसाद द्विवेदी और कमलेश दत्त त्रिपाठी (सं.) *सन्मार्ग : आगम विशेषांक,* 12 अगस्त, वर्ष 35, अंक 203 : 145-151.

रामा प्रसाद चंदा (1916), द *इंडो-आर्यन रेसेज : ए स्टडी ऑफ़ द ओरिजिन ऑफ़ इंडो-आर्यन पीपल ऐंड इंस्टीट्यूशंस, पार्ट 1*, द वीरेंद्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाही.

रॉबर्ट इ स्वोबोदा (1986 [1993]), *अघोरा : ऐट द लेफ़्ट हैंड ऑफ़ गॉड*, रूपा, नई दिल्ली.

विकास कुमार भट्टाचार्य (2003), *तारा इन हिंदुइज़म,* ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली.

शंकर दयाल सिंह (1986) 'एक गुदगुदी, एक व्यथागीत', सच्चिदानन्द वात्स्यायन (सं.) *जन जनक जानकी*, वत्सल फाउंडेशन, नई दिल्ली.

सदन झा, अप्रकाशित, *गोसांउन ऐंड द गोसांउनिक घर*.

सुमित सरकार (1997), *राइटिंग सोशल हिस्ट्री*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

हजारीप्रसाद द्विवेदी (1963), (2013), *चारु चंद्रलेख*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.